डाक पंजीकरण संख्या, मेरठ-29-2015-2017, ISSN-0973-9459
प्रकाशन तिथि-10 नवम्बर 2015, मूल्य-10/-रु., कुल पृष्ठ-40

स्याद्वाद सूर्य से आलोकित

सम्यग्ज्ञान
Samyakgyan

वर्ष-42 नवम्बर 2015 अंक-5

पूज्य गणिनीप्रमुख
श्री ज्ञानमती माताजी
की
82वीं जन्मजयंती
एवं
64वें संयम दिवस-
शरदपूर्णिमा महोत्सव
(27 अक्टूबर 2015)
के अवसर पर
शत-शत वंदन

पूज्य माताजी की जन्मभूमि टिकैतनगर में जिनमंदिर का सिंहद्वार एवं वेदी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook: jaintirthjambudweep
Website : www.highestjainidolinworld.com
www.jambudweep.org
www.encyclopediaofjainism.com

दशलक्षण पर्व-2015 (इन्द्रध्वज विधान) की झलकियाँ

दिनाँक-18 से 28 सितम्बर 2015, स्थान-मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र (नासिक) महा.
सान्निध्य-परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ससंघ

झण्डारोहण
-द्वारा-
श्री भूषण जयचंद कासलीवाल
श्रीमती अर्चना कासलीवाल
चांदवड़ (महा.)

सौधर्म इन्द्र
श्री संजय पापड़ीवाल-
सौ. अंजली पापड़ीवाल
व परिवारजन
श्री विजय-माधुरी पापड़ीवाल
डॉ. पन्नालाल-कुमकुमदेवी पापड़ीवाल
पैठण (महा.)

धनकुबेर
श्री सुभाषचंद-सौ. मंगला जैन साहू
जालना वाले, हस्तिनापुर

धनकुबेर
श्री चन्द्रशेखर-सौ. आरती कासलीवाल
चांदवड़

प्रतिष्ठाचार्य
श्री विजय जैन-हस्तिनापुर
एवं श्री सतेन्द्र जैन-तिवरी

विधान में भाग लेते लगभग 1000 इन्द्र-इन्द्राणी एवं भक्तजनों का समूह

संस्थापिका एवं शुभाशीर्वाद : वी.नि.सं. 2541, वि.सं. 2071 ISSN 0973-9459

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

Founder & Auspicious Blessings :

Pujya Ganini Pramukh Aryika

SHRI GYANMATI MATAJI

सम्यग्ज्ञान

हिन्दी मासिक

SAMYAKGYAN

MONTHLY MAGAZINE

समायोजन :

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका

श्री चंदनामती माताजी

Co-ordination :

Pragya Shramni Aryika

SHRI CHANDNAMATI MATAJI

निर्देशक एवं सम्पादक :

स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश

रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

Director & Editor :

Swastishri Karmayogi Peethadheesh

Ravindrakirti Swami Ji

प्रबंध सम्पादक :

जीवन प्रकाश जैन

Managing Editor :

Jeevan Prakash Jain

वर्ष	**–42**	**YEAR**	**–42**
नवम्बर	**–2015**	**NOVEMBER**	**–2015**
अंक	**–5**	**ISSUE**	**–5**

सम्यग्ज्ञान हिन्दी मासिक का सदस्यता शुल्क

वार्षिक सदस्यता शुल्क	100/-रु.
पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	500/-रु.
संरक्षक शुल्क-12 वर्ष के लिए	1100/-रु.
परम संरक्षक शुल्क-25 वर्ष के लिए	5100/-रु.
शिरोमणि संरक्षक आजीवन	11000/-रु.

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृ. क्र.
1.	सम्पादकीय – विश्व की सबसे ऊँची दिगम्बर जैन प्रतिमा	4
2.	प्रथमानुयोग-श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे	7
3.	करणानुयोग-त्रैलोक्यं गोष्पदायते	11
4.	चरणानुयोग-णमोकार मंत्र एवं चत्तारि मंगल पाठ	16
5.	द्रव्यानुयोग-यज्ज्ञानान्तर्गतंभूत्वा	18
6.	गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त परिचय	21
7.	दीपावली पर्व एवं वीर निर्वाण संवत् का नूतन वर्षाभिनंदन	26
8.	चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज का संक्षिप्त परिचय	29
9.	आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज-एक स्वर्णिम व्यक्तित्व	36

मांगीतुंगी पंचकल्याणक की समस्त जानकारी हेतु

Visit us at

www.highestjainidolinworld.com

Email

badimurtimangitungi@gmail.com

सम्पादकीय...

विश्व की सबसे ऊँची दिगम्बर जैन प्रतिमा

The Statue of Ahimsa

-जीवन प्रकाश जैन, प्रबंध सम्पादक

बंधुओं! ''सबसे ऊंची जैन प्रतिमा'' एक ऐसी प्रस्तुति का प्रदर्शन है, जिसको देखकर और सुनकर आप सभी के रोम-रोम पुलकित हो जायेंगे और प्रफुल्लित मन के साथ आप सभी का सीना गर्व से फूल जायेगा।

हम सभी के महान पुण्योदय से अनेकानेक सदियों के उपरांत पुनः एक ऐसे स्वर्ण युग का उदय हुआ है, जब हम जैन संस्कृति के विश्व में सबसे ऊंचे महाजिनबिम्ब का निर्माण इस धरातल पर स्वयं अपनी आंखों से देख रहे हैं।

जी हॉ महाजिनबिम्ब अर्थात् विश्व की सबसे ऊंची - 108 फुट विशालकाय दिगम्बर जैन प्रतिमा का निर्माण भारत देश की पवित्र वसुन्धरा पर, महाराष्ट्र प्रांत के नासिक जिला में, 99 करोड़ महामुनियों की निर्वाणभूमि, पावन सिद्धक्षेत्र मांगीतुंगी के पर्वत की अखण्ड पाषाण शिला में हो रहा है।

यह प्रतिमा युग की आदि में, शाश्वत नगरी अयोध्या में अवतरित हुए, जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की निर्मित की जा रही है।

यूँ तो दुनिया में भगवन्तों की असंख्य प्रतिमाएं विराजमान हैं लेकिन अखण्ड पाषाण में 108 फुट ऊंची प्रतिमा का निर्माण होना यह विश्व का एक महान आश्चर्य ही है। क्योंकि सम्पूर्ण विश्व में अखण्ड पाषाण से बननी वाली 108 फुट विशालकाय भगवान ऋषभदेव की दिगम्बर जैन प्रतिमा एक मात्र ही है, जिसके दर्शन-वंदन करने के लिए सम्पूर्ण दुनिया के पर्यटकों को, दर्शकों को, तीर्थ यात्रियों को, शोधार्थिन्यों को एवं जिनेन्द्र भगवान के भक्तों को भारत देश के मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर ही पधारना होगा।

तो आइये आपको इस विशाल प्रतिमा निर्माण के कतिपय पहलुओं से परिचित कराते है, जिससे कि आपके भी मन-मस्तिष्क में इस प्रतिमा निर्माण की ऐतिहासिक रूपरेखा तथा असंभव जैसे कार्य की संभवता का एक स्वर्णिम सफरनामा प्रवाहित हो सके।

सर्वप्रथम आपको बताते हैं कि इस प्रतिमा का निर्माण एक ऐसे व्यक्तित्व की प्रेरणा से हो रहा है, जिनका जीवन-चिंतन तथा कृतियां स्वयं अपने आपमें एक महान आश्चर्य है। वे व्यक्तित्व हैं-जैन समाज की सर्व प्राचीन दीक्षित, महासाधिका, परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी।

आइये अब आपको इस प्रस्तुति के माध्यम से एक नहीं अपितु दो महान गाथा से परिचित कराते हैं-

इस विश्व के आश्चर्य को निर्मित करने का चिंतन प्रदान करने वाली पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी स्वयं एक ऐसा इतिहास है, जिनके जीवन का हर पनन स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है।

संक्षिप्त में इतना ही कह सकते हैं कि 81 वर्ष की दीर्घ आयु में एक-एक मिनट ही नहीं अपितु एक-एक सेकेण्ड का जिनके जीवन में सदुपयोग है, ऐसी पूज्य माताजी ने सन् 1934 में शरदपूर्णिमा के दिन पिता श्री छोटेलाल एवं माता श्रीमती मोहिनी जी के घर बाराबंकी जिला के टिकैतनगर ग्राम में जन्म लिया। इसके पश्चात् मां से प्राप्त धार्मिक संस्कारों के बल पर सतत् अपने आत्मोत्थान के पथ पर चलते हुए सन् 1952 में मात्र 18 वर्ष की लघु वय में गृहत्याग कर सप्तम प्रतिमा को धारण किया तथा आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत को ग्रहण किया। पुनः सन् 1953 में महावीर जी (राजस्थान) में आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज के करकमलों द्वारा क्षुल्लिका दीक्षा लेकर कर ''वीरमती'' नाम प्राप्त किया और सन् 1956 में माधोराजपुरा (जयपुर) राज. में चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टाचार्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों द्वारा आर्यिका दीक्षा लेकर ''ज्ञानमती'' यह दिव्य नाम प्राप्त किया।

आज 63 वर्षों की ऐसी दीर्घ साधना एवं कठोर तपश्चर्या से जिनकी आत्मा का रोम-रोम पवित्र हो चुका है, वे वर्तमान युग के समस्त दिगम्बर जैन साधु-साध्वियों में सर्वप्राचीन दीक्षित साध्वी के रूप में जगत मान्य हैं।

अपनी इस तपश्चर्या के जीवन काल में ही पूज्य माताजी ने अपनी लेखनी से चारों अनुयोगों के महान ग्रंथों का लेखन भी

किया और जैन समाज के समक्ष लगभग 400 साहित्यिक कृतियां प्रस्तुत करके सम्पूर्ण भारतीय साहित्य जगत का उत्थान किया। संस्कृत, हिन्दी, कन्नड़, प्राकृत आदि भाषाओं में गद्य, पद्य सहित इन ग्रंथों में षट्खण्डागम जैसे महान ग्रंथों की संस्कृत टीका भी आपकी लेखनी से प्रसूत हुई है तथा बाल विकास एवं विधि-विधान की अनेक ऐतिहासिक रचनाओं का प्रतिपादन आपके करकमलों से हुआ है।

इसके साथ ही पूज्य माताजी की प्रेरणा से समूचे देश में जैन संस्कृति के अत्यन्त प्राचीन केन्द्रों का जीर्णोद्धार एवं विकास भी इस युग को प्राप्त पूज्य माताजी का वरदान ही है, जिसे सैकड़ों सदियां भुला नहीं सकती।

इन तीर्थों की श्रृंखला में हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार, प्रयाग-इलाहाबाद, अयोध्या (उ.प्र.), काकंदी (देवरिया) उ.प्र., शिर्डी (महा.), महावीर जी (राज.), माधोराजपुरा (राज.) आदि अनेक ऐसी प्राचीन तीर्थभूमियां है, जिनके विकास में पूज्य माताजी का महानीय योगदान अविस्मरणीय है।

तो आपने जाना है कि 81 वर्ष की उम्र में 63 वर्षों से जिन्होंने अपने जीवन में 24 घंटे में मात्र एक बार जल, आहार ग्रहण करके, पद यात्रा करके, केशलुंचन करके अनेक कठिन परिषहों को सहन किया है, उनकी महान आत्मा दुनिया में सर्वश्रेष्ठ विशुद्धि को प्राप्त कर चुकी है, यह एक यथार्थ ही है।

ऐसी पूज्य माताजी की पवित्र प्रेरणा से ही विश्व का महान आश्चर्य अर्थात् मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर 108 फुट विशालकाय भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा का निर्माण हो रहा है, यह उनकी दिव्यशक्ति का ही चमत्कार एवं प्रताप है जिसके कारण आज समाज को विश्व का सबसे बड़ा महाजिनबिम्ब प्राप्त हो रहा है।

आइये अब आपको बताते हैं संसार के सबसे बड़े जिनबिम्ब अर्थात् 108 फुट विशालकाय भगवान ऋषभदेव प्रतिमा के कुछ ऐतिहासिक बिन्दु।

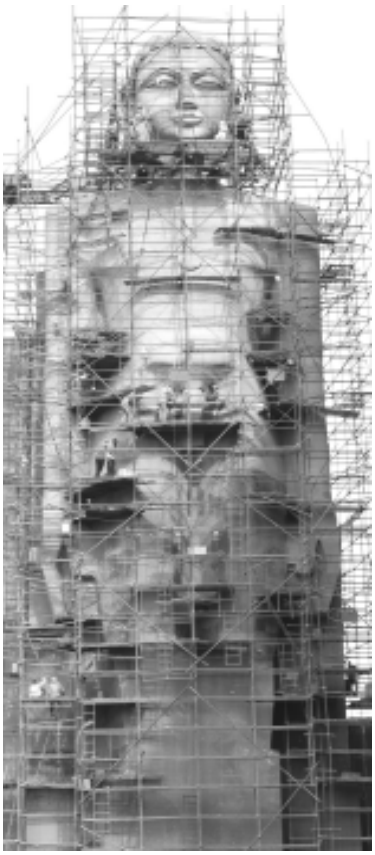

सर्वप्रथम इस प्रतिमा निर्माण की प्रेरणा सन् 1996 में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के मुखारविन्द से प्राप्त हुई। सन् 1996 में पूज्य माताजी का प्रवास मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर ही था, जब उनको चिंतन में तीन अतिशयकारी बिन्दु प्रगट हुए कि मांगी गिरी के पर्वत पर पूर्वाभिमुख विशाल पाषाण उपलब्ध है, जिसमें दुनिया की सबसे बड़ी जैन प्रतिमा का निर्माण किया जा सकता है। उनके चिंतन में दूसरी अतिशयकारी बात यह थी कि यह प्रतिमा प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के नाम से ही निर्मित की जाना चाहिए और उनके चिंतन का तीसरा अतिशयकारी आधार यह था कि प्रतिमा का माप नख से सिख तक 108 फुट होना चाहिए। उन्होंने जब अपने इस चिंतन को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया, तो समाज में हर्ष की लहर दौड़ गई और प्रतिमा निर्माण के लिए प्रकल्पों का शुभारंभ हो गया।

इसी क्रम में सर्वप्रथम सरकारी कार्यवाही के द्वारा मांगीगिरी के मूर्ति स्थल का पर्वत संस्थान के नाम कराया गया। पश्चात् सन् 2002 में पर्वत पर शिलापूजन करके मूर्ति निर्माण के लिए पाषाण को प्राप्त करने का प्रयत्न प्रारंभ हुआ। प्रारंभिक काल ऐसा था, जब पर्वत पर चढ़ने के लिए कोई स्थान तक नहीं था और अनेक खतरों से भरे जिम्मेवारियों के साथ संस्थान के पदाधिकारीगण रस्सों के सहारे ऊपर पहुंचकर कार्य को अंजाम देने का कुशल प्रयास करते थे। धीरे-धीरे सर्वप्रथम पर्वत पर जाने का कच्चा सड़क मार्ग बनाया गया और मूर्ति का पाषाण शीघ्र निकालने के लिए पहाड़ पर पोकलैण्ड मशीन का प्रयोग किया गया। इसके साथ ही पाषाण की कटिंग हेतु अत्यन्त कठिनताओं के साथ तलहटी से पहाड़ की ऊंचाई तक पाइप लाइन द्वारा पर्याप्त पानी की सुविधा बनाई गई और बिजली के लिए 24 घंटे बड़े-बड़े जेनरेटर के माध्यम से इस कार्य को संभव किया गया।

इस मूर्ति निर्माण के सफल कार्य हेतु पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी की सुशिष्या प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी का विशेष मार्गदर्शन तथा इस मूर्ति निर्माण के अध्यक्ष एवं कुशल नेतृत्वकर्ता कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी के साथ ही देश के अनेक दिग्गज इंजीनियर्स, वास्तुशास्त्री, भूगर्भशास्त्री, पर्यावरणविद्, शिल्पकार, मूर्तिकार एवं महान समर्पित समाजसेवी कार्यकर्ताओं का बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ, जिनके बल पर आज इस मूर्ति का निर्माण संभव हुआ है।

इस मूर्ति को पूज्य माताजी की प्रेरणा से ''द स्टेचू आफ अहिंसा'' नाम भी दिया गया है, जिससे कि सारे विश्व में यह प्रतिमा अहिंसा की प्रतिकृति के रूप में जानी जाये और सदैव ही आने वाले प्रत्येक श्रद्धालु व पर्यटकों को जैनधर्म में निहित ''अहिंसा परमो धर्मः'' तथा ''जिओ और जीने दो'' जैसे सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त होता रहे।

मांगी और तुंगी दो जुड़े हुए पर्वत हैं, जिनमें मांगी पर्वत की चोटी समुद्रतल से 4343 फुट ऊंची है, जहां भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा का निर्माण किया गया है तथा तुंगी पर्वत की चोटी समुद्रतल से 4385 फुट ऊंचाई पर स्थित है। दिगम्बर जैन आगम के अनुसार यह मांगीतुंगी पर्वत लगभग 12 लाख वर्ष प्राचीन है, जहां से 99 करोड़ महामुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया है। इस पर्वत पर अत्यन्त प्राचीन दिगम्बर जैन प्रतिमाओं एवं चरण आदि के दर्शन होते हैं, जिसमें सुध-बुध की गुफा आदि अनेक रोमांचक जिनमंदिर हैं, जिनका दर्शन करके जैन संस्कृति की प्राचीनता का आभास आने वाले प्रत्येक यात्री को होता है। इस पर्वत की चढ़ाई भक्तजन लगभग 3500 सीढ़ियों के माध्यम से करके अपनी यात्रा को मंगलमयी बनाते हैं।

इसके साथ ही तलहटी में भी भगवान पार्श्वनाथ का मंदिर चमत्कारिक है, जिसके दर्शन करके भक्तों की मनोकामनाएं सिद्ध होती हैं। यहीं पर विशाल मानस्तंभ तथा 21 फुट उत्तुंग भगवान मुनिसुव्रतनाथ की खड्गासन प्रतिमा सहित जिनमंदिर, सहस्रकूट जिनालय आदि दर्शनीय एवं वंदनीय हैं, जिनमें तीर्थंकर भगवन्तों की प्राचीन प्रतिमाएं विराजमान हैं।

आइये अब आपको बताते हैं विश्व की सबसे ऊंची 108 फुट विशालकाय भगवान ऋषभदेव प्रतिमा के कुछ माप-

इस प्रतिमा की कुल ऊंचाई नख से शिख तक 108 फुट है, जिसमें

भगवान का मुख 12 फुट का है,
गर्दन 4 फुट की है,
वक्षस्थल 12 फुट का है,
वक्षस्थल से नाभी तक 12 फुट है,
नाभी से इन्द्री 12 फुट है,
इन्द्री से घुटने तक 24 फुट है,
घुटने 4 फुट के हैं,
घुटने से पैर 24 फुट के हैं,
पगतली 4 फुट की है

इस प्रकार यह मूर्ति अपने आपमें ऐतिहासिक स्वरूप के साथ 108 फुट की निर्मित की गई है, जिसमें प्रशस्ति पत्थर का माप, कमलासन तथा भगवान के बालों की ऊंचाई पृथक है, जिनको मिलाकर यह प्रतिमा 121 फुट की विशाल ऊंचाई वाली निर्मित की गई है।

बन्धुओं!

आपने जाना है इस प्रतिमा निर्माण एवं प्रतिमा निर्माण की प्रेरणास्रोत पूज्य माताजी के रूप में दो महान आश्चर्यों की एक गाथा को, लेकिन विशेषरूप से अब आपको जानना है भगवान ऋषभदेव की इस विशाल प्रतिमा का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव फरवरी 2016 में होने जा रहा है, जिसमें पंचकल्याणक प्रतिष्ठा 11 से 17 फरवरी 2016 तक सम्पन्न होगी। पश्चात् 18 फरवरी से विश्व के इस महाजिनबिम्ब का महामस्तकाभिषेक महोत्सव भारी धूमधाम के साथ प्रारंभ होगा। जिसमें देश और विदेश के समस्त दिगम्बर जैन श्रद्धालु भक्तों को पुण्यलाभ लेने का महत्वपूर्ण अवसर प्राप्त होगा।

अतः आप सभी से निवेदन है कि 108 फुट विशालकाय भगवान ऋषभदेव प्रतिमा के इस अंतर्राष्ट्रीय पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव में अवश्य भाग लेकर इन्द्र-इन्द्राणी बनने का सौभाग्य अर्जित करें और 11 फरवरी से लगातार भगवान के पंचकल्याणक एवं मस्तकाभिषेक में शामिल होवें। आप 1 लाख रुपये में भी इन्द्र-इन्द्राणी बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं तथा 51000 रुपये में भी इन्द्र-इन्द्राणी बन सकते हैं। आपके आवास, भोजन, पूजन सामग्री, वस्त्र आदि की समुचित व्यवस्था का प्रबंध समिति की ओर से प्राप्त होगा। इसके साथ ही स्मृतिरूप में मूर्ति निर्माण तथा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की सदा गौरवगाथा गाने वाले एक स्थाई ग्रंथ का भी निर्माण किया जा रहा है, जिसमें आपके फोटो भी प्रकाशित किये जायेंगे। इस प्रकार अवश्य ही आप दुनिया के इस ऐतिहासिक महोत्सव में इन्द्र-इन्द्राणी बनने का सौभाग्य अर्जित करें, ऐसा हमारा निवेदन है।

इसके साथ ही आप भगवान के मस्तकाभिषेक महोत्सव में भी एक कलश अपने परिवार की ओर से आरक्षित कर सकते हैं, जिसमें एक लाख रुपये के रत्न कलश से लेकर 51000 रुपये का स्वर्ण कलश, 25000 रुपये का रजत कलश, 11000 रुपये का भक्ति कलश तथा 5100 रुपये का श्रद्धा कलश आप अपनी सुविधानुसार आरक्षित करा सकते हैं।

आने वाले समस्त बंधुओं के आवास की व्यवस्था समिति की ओर से सुचारू रहेगी। इस महोत्सव की अन्य समस्त रूपरेखा, नियमावली एवं सम्पूर्ण जानकारी आप हमारी वेबसाइट www.highestjainidolinworld.com से प्राप्त कर सकते हैं।

मंगलाचरण

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।1।।

अर्थ–श्री वर्धमान स्वामी को नमस्कार होवे, जिन्होंने उपसर्ग करने वाले संगमदेव आदि विद्विष—शत्रुओं को भी नमित किया है एवं जिनके केवलज्ञान में ये तीनों लोक गोष्पद—गाय के पैर के गड्ढे के समान लघु प्रतीत होते हैं। ऐसे अंतिम तीर्थंकर महावीरस्वामी को नमस्कार होवे।।1।।

प्रिय पाठक बंधुओं! जैन शासन के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के प्रमुख गणधर शिष्य श्री गौतम स्वामी द्वारा रचित उपर्युक्त मंगलाचरण के ऊपर ''गौतम गणधर वाणी-अमृतवर्षिणी टीका'' नामक ग्रंथ में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने अनेकानेक ग्रंथों के आधार से जो ज्ञान का अमृत संग्रहीत किया है। उसी के कुछ अंश यहाँ चार अनुयोगों में प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

गौतम स्वामी उवाच-
श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे

प्रस्तुति–गणिनीप्रमुख आर्यिका ज्ञानमती

अमृतवर्षिणी टीका–

जिनके चरणों में विद्वेषी शत्रुगण भी नमन करते हैं ऐसे श्रीमान् वर्धमान महावीर स्वामी को मेरा नमस्कार है। यहाँ प्रसंगानुसार उन महावीर स्वामी का परिचय प्रस्तुत है।

भगवान महावीर स्वामी का जीवन परिचय

मंगलाचरण

सिद्धार्थ–राजकुल–मंडन–वीरनाथः,
जातः सुकुण्डलपुरे त्रिशलाजनन्यां।
सिद्धिप्रियः सकल–भव्यहितंकरो यः,
श्री सन्मतिर्वितनुतात् किल सन्मतिं मे।।1।।

पुरुरवा भील

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर किनारे पर 'पुष्कलावती' नाम का देश है उसकी 'पुण्डरीकिणी' नगरी में एक 'मधु' नाम का वन है। उसमें 'पुरुरवा' नाम का एक भीलों का राजा अपनी 'कालिका' नाम की स्त्री के साथ रहता था।किसी दिन दिग्भ्रम के कारण 'श्री सागरसेन' नाम मुनिराज को इधर उधर भ्रमण करते हुए देखकर यह भील उन्हें मारने को उद्यत हुआ उसकी स्त्री ने यह कहकर मनाकर दिया कि 'ये वन के देवता घूम रहे हैं इन्हें मत मारो।' वह पुरुरवा उसी समय मुनि को नमस्कार कर तथा उनके वचन सुनकर शांत हो गया। मुनिराज ने उससे मद्य, मांस और मधु इन तीन मकारों का त्याग करा दिया। मांसाहारी भील भी इन तीनों के त्यागरूप व्रत को जीवनपर्यन्त पालन कर आयु के अन्त में मरकर सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयु को धारण करने वाला देव हो गया। कहाँ तो वह हिंसक क्रूर भील पाप करके नरक चला जाता और कहाँ उसे गुरु का समागम मिला कि जिनसे हिंसा का त्याग करके स्वर्ग चला गया।

मरीचि कुमार

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी आर्यखण्ड के मध्य भाग में कौशल नाम का देश है। इस देश के मध्य भाग में अयोध्या नगरी हैं। वहाँ आदिनाथ भगवान् के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती की अंनतमती रानी से 'यह पुरुरवा भील का जीव देव' मरीचि कुमार नाम का पुत्र हुआ। अपने बाबा भगवान् वृषभदेव की दीक्षा के समय स्वयं ही गुरु भक्ति से प्रेरित होकर मरीचि ने कच्छ आदि चार हजार राजाओं के साथ दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। भगवान् तो छह महिने का उपवास लेकर ध्यान में लीन हो गये। मरीचि आदि चार हजार राजाओं ने क्षुधा,तृषा आदि वेदनाओं से घबड़ाकर वन के फल आदि को स्वयं ही भक्षण करना शुरू कर दिया। उस समय उस दिगम्बर वेष में वैसा स्वच्छंद आचरण करते देख वनदेवता ने उन्हें भ्रष्ट आचरण करने से रोका। तब उन साधुओं ने अनेक वेष बना लिये। मरीचि ने सबसे प्रथम पारिव्राजक दीक्षा धारण कर ली। किसी ने वल्कल पहने, किसी ने जटायें बढ़ाई, किसी ने लंगोटी लगाई, इत्यादि अनेक

वेषधारी बन गये। लगभग एक वर्ष के उपवास के बाद भगवान् ऋषभदेव को आहार मिला पुनः एक हजार वर्ष तपश्चरण के बाद केवलज्ञान हो गया। उस समय समवसरण में सभी भ्रष्ट राजाओं ने पुनः जैनेश्वरी दीक्षा ले ली और स्वर्ग, मोक्ष प्राप्त किया, किन्तु मारीचि कुमार ने मान कषाय के आवेश में आकर पुनः दिगम्बर दीक्षा नहीं ली, उसी मिथ्यामत का प्रचार करता रहा। उसी समय से 'तीन सौ त्रेसठ' पाखण्ड मत चले हैं।

मरीचि का भवभ्रमण

मरीचिकुमार आयु के अन्त में मरकर ब्रह्मस्वर्ग में दस सागर आयु वाला देव हो गया। वहाँ से आकर जटिल ब्राह्मण हुआ, पुनः पारिव्राजक बना। पुनः मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ, पुनः वहां से पुष्यमित्र ब्राह्मण होकर पारिव्राजक बना। पुनः सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। पुनः वहां से आकर अग्निसह ब्राह्मण होकर पारिव्राजक दीक्षा ले ली। पुनः मरकर देव हुआ, वहां से च्युत होकर अग्निमित्र ब्राह्मण होकर पारिव्राजक तापसी हुआ। पुनरपि माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ से आकर भारद्वाज ब्राह्मण होकर त्रिदण्डी साधु बन गया और पुनरपि स्वर्ग में गया। वहां से च्युत होकर मिथ्यात्व के निमित्त से यह मरीचि कुमार त्रस-स्थावर योनियों में असंख्यात वर्ष तक परिभ्रमण करता रहा।

कुछ पुण्य से राजगृह नगर के शांडिल्य ब्राह्मण की पारशरी पत्नी से 'स्थावर' नाम का पुत्र हुआ। वहाँ भी सम्यग्दर्शन से शून्य पारिव्राजक की दीक्षा लेकर अन्त में मरकर माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु वाला देव हो गया।

विश्वनंदी

इसी मगधदेश के राजगृह नगर में **'विश्वभूति'** राजा की **'जैनी'** नामकी रानी से यह मरीचि कुमार का जीव स्वर्ग से आकर **'विश्वनंदी'** नाम का राजपुत्र हो गया। विश्वभूति राजा का एक विशाखभूति नाम का छोटा भाई था, उसकी लक्ष्मणा पत्नी से 'विशाखनन्दि' नाम का मूर्ख पुत्र हो गया। किसी दिन विश्वभूति राजा ने विरक्त होकर छोटे भाई विशाखभूति को राज्य देकर अपने पुत्र **'विश्वनन्दि'** को युवराज बना दिया और स्वयं तीन सौ राजाओं के साथ श्रीधर मुनि के पास दीक्षित हो गये।

किसी दिन विश्वनन्दी युवराज अपने 'मनोहर' नामक उद्यान में अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उसे देख, चाचा के पुत्र विशाखनंद ने अपने पिता के पास जाकर उस उद्यान की याचना की। विशाखभूति ने भी युवराज विश्वनन्दी को 'विरुद्ध राजाओं को जीतने के बहाने' बाहर भेजकर पुत्र को बगीचा दे दिया। विश्वनन्दी को इस घटना का तत्काल पता लग जाने से वह क्रुद्ध होकर वापस विशाखनंद को मारने को उद्यत हुआ। तब विशाखनंदी कैथे के वृक्ष पर चढ़ गया, इसने कैथे के वृक्ष को उखाड़ दिया। तब वह भागा और पत्थर के खम्भे के पीछे हो गया, यह विश्वनंदी पत्थर के खम्भे को उखाड़कर उससे उसे मारने को दौड़ा। विशाखनंदी वहां से डर कर भागा तब युवराज के हृदय में सौहार्द और करुणा जाग्रत हो गई। उसने उसी समय उसे अभयदान देकर बगीचा भी दे दिया और स्वयं 'संभूत' नामक मुनि के पास दीक्षा धारण कर ली, तब विशाखभूति ने भी पापों का पश्चात्ताप कर दीक्षा ले ली।

किसी दिन मुनि विश्वनंदी कृश अत्यन्त शरीरी मथुरा में आहार के लिये आये, उस समय यह विशाखनंदि वेश्या के महल की छत से मुनि को देख रहा था। मुनि को गाय ने धक्के से गिरा दिया यह देख विशाखनन्दि बोला 'तुम्हारा पत्थर का खम्भा तोड़ने वाला पराक्रम कहाँ गया ? मुनि ने यह दुर्वचन सुने उन्हें क्रोध आ गया, अन्त में निदान सहित संन्यास से मरकर महाशुक्र स्वर्ग में देव हो गये, वहीं पर चाचा विशाखभूति भी देव हो गये, दोनों की आयु सोलह सागर प्रमाण थी।

अर्धचक्री त्रिपृष्ठकुमार

सुरम्य देश के पोदनपुर नगर में प्रजापति महाराज की जयावती रानी से 'विशाखभूति का जीव' विजय नाम का पुत्र हुआ और महाराज की दूसरी रानी मृगावती से 'विश्वनंदी का जीव' त्रिपृष्ठ नाम का पुत्र हुआ।

विजय बलभद्रपद के धारक हुए और ये त्रिपृष्ठ अर्धचक्री पद के धारक हुए। उधर विशाखनंदि का जीव चिरकाल तक संसार में भ्रमण करता हुआ कुछ पुण्य से विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के अलकापुर नगर में मयूरग्रीव विद्याधर की नीलांजना रानी से 'अश्वग्रीव' पुत्र हुआ। यह प्रतिनारायण हुआ था। कालांतर में युद्ध में अश्वग्रीव के चक्ररत्न से ही अश्वग्रीव को मारकर त्रिखण्डाधिपति राजा त्रिपृष्ठ ने अपने भाई विजय के साथ बहुत काल तक राज्यलक्ष्मी का उपभोग किया, अन्त में भोगलिप्सा में मरकर सप्तम नरक में चला गया क्योंकि

सम्यग्दर्शन और पांच अणुव्रतों से रहित राज्य वैभव नरक का ही कारण है।

नरक में तेंतीस सागरों की आयु भोगकर सिंह हुआ और गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास आदि बाधाओं से दुःखी हुआ, वहाँ पर प्राणी हिंसा से मांसाहार करते हुए पुनः मरकर पहले नरक चला गया। वहाँ के दुःखों को भोगकर वहाँ से निकल कर पुनरपि इसी जम्बूद्वीप में सिंधुकूट की पूर्व दिशा में हिमवान् पर्वत के शिखर पर सुन्दर बालों से युक्त सिंह हुआ।

पुण्यशाली मृगेन्द्र

वह सिंह किसी समय एक हिरण को पकड़कर खा रहा था। उसी समय अतिशय दयालु 'अजितञ्जय' और 'अमितगुण' नामक दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आकाश मार्ग से उतर कर उस सिंह के पास पहुँचे और शिलातल पर बैठकर जोर-जोर से उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा कि "हे भव्य मृगराज! तू अर्धचक्री त्रिपृष्ठ के भव में पांचों इन्द्रियों के विषयों का सेवन कर तृप्त नहीं हुआ तथा सम्यग्दर्शन से रहित होने के कारण तू नरक में चला गया, वहाँ अत्यन्त प्रचंड और लोहे के घनों की चोट से तेरा चूर्ण किया जाता था, इत्यादि दुःखों को भोगकर तू वहाँ से निकलकर सिंह हुआ पुनः हिंसा के पाप से मरकर नरक गया। वहाँ से निकलकर पुनः सिंह होकर हिंसा में रत हैं। तू वृषभदेव के समय मरीचि के भव में तीर्थंकर वृषभदेव के वचनों का अनादर कर त्रस-स्थावर योनियों में असंख्यात वर्ष तक भ्रमण करता रहा। अब इस भव से दशवें भव में तू अन्तिम तीर्थंकर होगा। यह बस मैंने श्रीधर तीर्थंकर से सुना है। इन सब बातों को सुनते ही सिंह को जातिस्मरण हो गया। संसार के भयंकर दुःखों की स्मृति से उसका शरीर कांपने लगा तथा आंखों से अश्रु गिरने लगे। बहुत देर तक अश्रु गिरते रहने से ऐसा मालूम होता था कि मानों हृदय में सम्यक्त्व को स्थान देने की इच्छा से मिथ्यात्व ही बाहर निकल रहा है।

उसकी शांत भावना को देखकर मुनि ने उसे सम्यक्त्व और अणुव्रत ग्रहण कराये। सिंह ने मुनिराज की भक्ति से बार-बार प्रदक्षिणायें दीं, बार-बार प्रणाम किया और तत्काल ही काललब्धि के आ जाने से तत्त्वश्रद्धानपूर्वक श्रावक के व्रत ग्रहण किये। सिंह का मांसाहार के सिवाय और कोई आहार नहीं, अतः मांस का त्याग करने से उसने "निराहार व्रत" ग्रहण किया था।

सम्यग्दर्शन का लक्षण—सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और तत्त्वों का श्रद्धान करना।

पंचाणुव्रत का लक्षण—

अहिंसाणुव्रत—मन-वचन-काय से किसी भी जीव को नहीं मारना।

सत्याणुव्रत—स्थूल झूठ नहीं बोलना।

अचौर्याणुव्रत—बिना दी हुई पर की वस्तु नहीं लेना।

ब्रह्मचर्याणुव्रत—अपनी स्त्री के सिवाय सबको माता, बहन समझना।

परिग्रह परिमाणाणुव्रत—धन-धान्य आदि परिग्रह का जीवन भर के लिए प्रमाण कर लेना।

तिर्यंचों के संयमासंयम के आगे व्रत नहीं हो सकते। इसीलिए वह देशव्रती कहलाया। वह सिंह सब कुछ त्याग कर शिलातल पर बैठकर चित्रलिखित (पत्थर की मूर्ति) के समान हो गया था। चारण मुनि उसे शिक्षा देकर बार-बार उसका स्पर्श करते हुए चले गये-

महावीर चरित में लिखा है कि-

'यह मरा हुआ है ऐसा समझ मदोन्मत्त हाथियों ने उसकी जटाओं को नष्ट कर दिया, डांस, मक्खी और मच्छरों ने मर्म स्थानों को काट डाला, लोमड़ी और श्रृगाल मृतक समझकर उस सिंह को तीक्ष्ण नखों के द्वारा नोंच-नोंच कर खाने लगे तो भी उस सिंह ने अपनी परम समाधि नहीं छोड़ी, क्षमा भाव से सब सहन करता रहा। पूर्वोक्त प्रकार से एक महीने तक निश्चल रहकर अनशन धारण कर पाप रहित हुआ प्राणों से शरीर को छोड़ा।' इस प्रकार संन्यास विधि से मरा और शीघ्र ही सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नाम का देव हो गया, वहां दो सागर तक उत्तम सुख भोगे।

पुनः मरीचि कुमार के जीव की जैनेश्वरी दीक्षा

स्वर्ग से आकर, धातकीखंड द्वीप के पूर्व मेरु सम्बन्धी पूर्व विदेह के मंगलावती देश के विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में कनकप्रभ नगर के राजा कनकपुंख विद्याधर और कनकमाला रानी के 'कनकोज्ज्वल' नाम का पुत्र हुआ। किसी दिन प्रियमित्र नाम के अवधिज्ञानी मुनि से दयामय जैनधर्म का उपदेश सुनकर दीक्षा ले ली। बहुत काल तक तपश्चरण करते हुए 'कनकोज्ज्वल' मुनिराज संन्यास विधि से मरकर सातवें स्वर्ग में देव हो गये वहां के भोगों को भोगकर समाधिपूर्वक प्राण छोड़े और इसी अयोध्या के राजा वज्रसेन की रानी शीलवती से 'हरिषेण' पुत्र हो गया। राज्य वैभव का अनुभव करके हरिषेण ने श्रुतसागर मुनि से दीक्षा ले ली। तपश्चरण के प्रभाव से महाशुक्र स्वर्ग में देव हो गये। वहां से चयकर धातकीखंड की पुंडरीकिणी नगरी के राजा सुमित्र की रानी मनोरमा से 'प्रियमित्र' नाम का पुत्र हो गया। यह प्रियमित्र

चक्रवर्ती पद को प्राप्त हुआ, चक्ररत्न से छहखंड को जीतकर बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं से सेवित अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी, छ्यानवें हजार रानियों के वैभव का अनुभव करते हुए क्षेमंकर जिनेन्द्र धर्मोपदेश सुनकर दीक्षित हो गया। यह प्रियमित्र मुनि आयु के अन्त में समाधिपूर्वक मरण करके सहस्रार स्वर्ग में 'सूर्यप्रभ' नाम के देव हुए। वहां पर अठारह सागर तक दिव्य सुखों का अनुभव कर जम्बूद्वीप के छत्रपुर नगर के राजा नंदिवर्धन की वीरवती रानी से 'नंद' नाम का एक सज्जन पुत्र हुआ। यहां भी अभिलषित राज्य का उपभोग कर 'प्रोष्ठिल' नाम के श्रेष्ठ गुरु के पास दीक्षा ले ली और ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

तीर्थंकर प्रकृति का बंध

दिगम्बर मुनि पंचमहाव्रत, पंचसमिति, पंचेंद्रिय निरोध, षट् आवश्यक क्रिया, केशलोंच, वस्त्रों का पूर्ण त्याग, स्नान का त्याग, पृथ्वी पर शयन, दंतधावन का त्याग, खड़े होकर भोजन और एक बार भोजन इस प्रकार अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं। सम्पूर्ण आरम्भ और परिग्रह से रहित ज्ञान-ध्यान में रत रहते हैं। परीषह और उपसर्गों को शांति और क्षमाभाव से सहन करते हैं।उत्तम क्षमादि इस धर्मों का पालन करते हैं। नंद मुनिराज ने घोर तपश्चरण से अपनी आत्मा को निर्मल बना लिया एवं दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं का चिंतवन करने लगे। सातिशय तीर्थंकर प्रकृति का बंध कराने में समर्थ उन भावनाओं का संक्षिप्त लक्षण इस प्रकार है-

सोलहकारण भावना—

1. दर्शनविशुद्धि—पच्चीस मल दोषरहित विशुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करना।

2. विनयसम्पन्नता—देव, शास्त्र, गुरु तथा रत्नत्रय की विनय करना।

3. शीलव्रतों में अनतिचार—व्रतों और शीलों में अतिचार नहीं लगाना।

4. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग—सदा ज्ञान के अभ्यास में लगे रहना।

5. संवेग—धर्म और धर्म के फल में अनुराग होना।

6. शक्तितस्त्याग—अपनी शक्ति के अनुसार आहार, औषधि,अभय और शास्त्र दान देना।

7. शक्तितस्तप—अपनी शक्ति को न छिपा कर अन्तरंग, बहिरंग तप करना।

8. साधुसमाधि- साधुओं का उपसर्ग आदि दूर करना या समाधि सहित वीर मरण करना।

9. वैयावृत्यकरण—व्रती, त्यागी साधर्मी की सेवा करना, वैयावृत्ति करना।

10. अर्हंतभक्ति—अरहंत भगवान् की भक्ति करना।

11. आचार्यभक्ति—आचार्य की भक्ति करना।

12. बहुश्रुतभक्ति—उपाध्याय परमेष्ठी की भक्ति करना।

13. प्रवचनभक्ति—जिनवाणी की भक्ति करना।

14. आवश्यक अपरिहाणि—छह आवश्यक क्रियाओं का सावधानी से पालन करना।

15. मार्गप्रभावना—जैनधर्म का प्रभाव फैलाना।

16. प्रवचनवत्सलत्व—साधर्मीजनों में अगाध प्रेम करना।

इन सोलहकारण भावनाओं में दर्शनविशुद्धि भावना का होना बहुत जरूरी है फिर उसके साथ दो, तीन आदि कितनी भी भावनायें हों या सभी हों तो तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है। नन्द मुनिराज ने इन भावनाओं से तीनलोक में आश्चर्य को उत्पन्न कराने वाली 'तीर्थंकर' प्रकृति का बंध कर लिया। आयु के अंत में आराधना से मरकर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में श्रेष्ठ इंद्र हो गये।

पाठक वृंद! देखिए! पुरुरवा भील मद्य-मांस-मधु के त्याग से सौधर्म स्वर्ग के सुख का अनुभव कर चक्रवर्ती का पुत्र हुआ। पुनः मिथ्यात्व और मानकषाय से सहित था फिर भी अल्प आरम्भ परिग्रह रखने से और मंद कषायों के होने से तथा कुतपश्चरण के प्रभाव से देव हो गया। पांच बार पारिव्राजक बना व छह बार देवपद पाया। किन्तु आगे मिथ्यात्व के निमित्त से त्रस-स्थावर और निगोदरूप घोर कुयोनियों में असंख्यात वर्ष पर्यंत घूमता रहा। कदाचित् विश्वनंदी मुनि भी हुआ तो निदान से दूषित होकर अर्धचक्री पद का अनुभव करके भी नरकों के महान् दुःख भोगे। जब सिंह की पर्याय में सम्यक्त्वरत्न को प्राप्त कर लिया तब अणुव्रत के प्रभाव से और सल्लेखना के माहात्म्य से उत्तम देव हुआ। अब यह सम्यक्त्व के निमित्त से उत्तम-उत्तम देवसुख और राज्यसुखों का अनुभव करता रहा।

देखिये! सिंह के जीव ने आगे चलकर चार बार सम्यक्त्व सहित मुनिव्रत धारण किया तथा 'संसारी जीवों को दुःख से निकालकर मैं उत्तम सुख में पहुँचा दूँ, इस प्रकार उत्कृष्ट भावनारूप अपायविचय से 'नंदमुनिराज' ने असंख्य प्राणियों पर अनुग्रह करने में समर्थ ऐसी तीर्थंकर प्रकृति बांध ली।

गौतम स्वामी उवाच-

त्रैलोक्यं गोष्पदायते

प्रस्तुति–गणिनीप्रमुख आर्यिका ज्ञानमती

अमृतवर्षिणी टीका–

लोगो अकिट्टिमो खलु, अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवेहिं फुडो, सव्वागासवयवो णिच्चो।।4।।

''लोक्यन्ते'' अवलोक्यन्ते जीवादिषड्द्रव्याणि अस्मिन्निति लोकः'

जहाँ पर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छहों द्रव्य देखे जाते हैं वह लोक हैं। वह लोक अकृत्रिम, अनादिनिधन है एवं स्वभाव से बना हुआ है अर्थात् इसे किसी ने बनाया नहीं है।

तीनलोक का वर्णन

सर्वज्ञ भगवान से अवलोकित अनंतानंत अलोकाकाश के बहुमध्य भाग में 343 घन राजू प्रमाण पुरुषाकार लोकाकाश है। यह लोकाकाश जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल इन पाँचों द्रव्यों से व्याप्त है। आदि और अंत से रहित–अनादि अनंत है, स्वभाव से ही उत्पन्न हुआ है। छह द्रव्यों से सहित यह लोकाकाश स्थान निश्चय ही स्वयं प्रधान है। इसकी सब दिशाओं में नियम से अलोकाकाश स्थित है।

इस लोक के 3 भेद हैं–अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक।

अधोलोक का आधार स्वभाव से वेत्रासन के सदृश, मध्यलोक का आकार खड़े किये हुए मृदंग के ऊपरी भाग के समान एवं ऊर्ध्वलोक का आकार खड़े किये हुए मृदंग के सदृश है।

सम्पूर्ण लोक की ऊँचाई 14 राजू प्रमाण है एवं मोटाई सर्वत्र 7 राजू है।

तीन लोक के जड़ भाग से लोक की ऊँचाई का प्रमाण

अधोलोक की ऊँचाई 7 राजू, मध्यलोक की ऊँचाई 1 लाख 40 योजन एवं ऊर्ध्व लोक की ऊँचाई 7 राजू प्रमाण है। असंख्यातों योजनों का 1 राजू होता है। 14 राजू ऊँचे लोक में 7 राजू में नरक एवं 7 राजू में स्वर्ग है, इन दोनों के मध्य में 1 लाख 40 योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है, बस इसी सुमेरु प्रमाण ऊँचाई वाला मध्य लोक है जो कि ऊर्ध्वलोक का कुछ भाग है और वह राजू में ना कुछ के समान है। अतएव ऊँचाई के वर्णन में 7 राजू में अधोलोक एवं सात राजू में ऊर्ध्वलोक कहा गया है।

लोक की चौड़ाई का प्रमाण

नरक के तलभाग में चौड़ाई 7 राजू है। घटते-घटते यह चौड़ाई मध्यलोक में 1 राजू रह गई है। पुनः मध्यलोक के ऊपर बढ़ते-बढ़ते ब्रह्म लोक-पाँचवें स्वर्ग तक चौड़ाई 5 राजू हो गई है। पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग से आगे घटते-घटते सिद्ध शिला तक चौड़ाई पुनः 1 राजू रह गई है।

त्रस नाली का प्रमाण

तीनों लोकों के बीचों-बीच में 1 राजू चौड़ी एवं 1 राजू मोटी तथा कुछ कम 13 राजू ऊँची त्रसनाली है। इस त्रसनाली में ही त्रस जीव पाये जाते हैं।

अधोलोक के राजू का वर्णन

मृदंगाकार अधोलोक में रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा ये सात पृथ्वियाँ हैं, जोकि कुछ कम एक-एक राजू के अंतराल से हैं अर्थात् इन पृथ्वियों की मोटाई क्रम से 1 लाख 80 हजार योजन, बत्तीस हजार योजन, अट्ठाईस हजार योजन आदि है। मध्य लोक के अधोभाग से लेकर पहला राजू शर्करा पृथ्वी के अधोभाग में पूर्ण होता है। अर्थात् 1 राजू में रत्नप्रभा और शर्करा प्रभा ये दोनों ही पृथ्वी हैं। इसके आगे दूसरा राजू प्रारंभ होकर बालुकाप्रभा के अधोभाग में पूर्ण होता है। तीसरा राजू पंकप्रभा पृथ्वी के अधोभाग में समाप्त होता है। इसके अनंतर चौथा राजू धूमप्रभा के अधोभाग में, पाँचवां राजू तमःप्रभा के अधोभाग में, छठा राजू महातमःप्रभा के अंत में एवं सातवाँ राजू अधोलोक के तल भाग में समाप्त होता है। मतलब यह है कि 1 राजू में 2 नरक, 5 राजू में पाँच नरक, ऐसे 6 राजू में 7 नरक एवं 1 राजू में निगोद भाग स्थित है–ऐसा समझना चाहिये।

1 राजू में–रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा
1 राजू में–बालुकाप्रभा
1 राजू में–पंकप्रभा
1 राजू में–धूमप्रभा
1 राजू में–तमःप्रभा
1 राजू में–महातमःप्रभा
1 राजू में–नित्य निगोद, ऐसे सात राजू हुए।

अधोलोक से मध्यलोक तक की चौड़ाई घटने का क्रम

अधोलोक के तल भाग में–7 राजू

सातवीं पृथ्वी के निकट–6-1/7 राजू
छठी पृथ्वी के निकट–5-2/7 राजू
पाँचवी पृथ्वी के निकट–4-3/7 राजू
चौथी पृथ्वी के निकट–3-4/7 राजू
तीसरी पृथ्वी के निकट–2-5/7 राजू
दूसरी पृथ्वी के निकट–1-6/7 राजू
प्रथम पृथ्वी के निकट–1राजू मात्र
सम्पूर्ण मध्य लोक की चौड़ाई 1 राजू मात्र ही है।

ऊर्ध्व लोक में राजू के प्रमाण का वर्णन

मध्यलोक के ऊपरी भाग में सौधर्म विमान के ध्वजदण्ड तक 1 लाख 40 योजन कम 1-1/2 राजू प्रमाण ऊँचाई है। इसके आगे माहेन्द्र और सानत्कुमार के ऊपरी भाग तक 1-1/2 राजू पूर्ण होता है। अनंतर ब्रह्मोत्तर के ऊपरी भाग में 1/2 राजू, कापिष्ठ के ऊपरी भाग में 1/2 राजू, महाशुक्र के ऊपरी भाग में 1/2 राजू एवं सहस्रार के ऊपरी भाग में 1/2 राजू, आनत के ऊपरी भाग में 1/2 राजू, आरण के ऊपरी भाग में 1/2 राजू समाप्त होता है। पुनः 1 राजू की ऊँचाई में 9 ग्रैवेयक, 9 अनुदिश, 5 अनुत्तर एवं सिद्धशिला है। अर्थात्–

कुछ कम 1-1/2 राजू में–सौधर्म, ईशान स्वर्ग
1-1/2 राजू में–सानत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्ग
1/2 राजू में–ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर स्वर्ग
1/2 राजू में–लांतव, कापिष्ठ स्वर्ग
1/2 राजू में–शुक्र, महाशुक्र स्वर्ग
1/2 राजू में–सतार, सहस्रार स्वर्ग
1/2 राजू में–आनत, प्राणत स्वर्ग
1/2 राजू में–आरण, अच्युत स्वर्ग
1 राजू में-9 ग्रैवेयक 9 अनुदिश, 5 अनुत्तर और सिद्ध शिला पृथ्वी है।

1-1/2+1-1/2+1/2+1/2+1/2+1/2+1/2+1/2+1=7 राजू

प्रथम स्वर्ग से सिद्धशिला तक लोक की चौड़ाई बढ़ने-घटने का क्रम

मध्यलोक में	–1 राजू
सौधर्म, ईशान स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–2-5/7 राजू
सानत्कुमार, माहेन्द्र के अंत में चौड़ाई	–4-3/7 राजू
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर के अंत में चौड़ाई	–5 राजू
लांतव, कापिष्ठ स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–4-3/7 राजू
शुक्र-महाशुक्र स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–3-6/7 राजू
सतार-सहस्रार स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–3-2/7 राजू
आनत-प्राणत स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–2-5/7 राजू
आरण-अच्युत स्वर्ग के अंत में चौड़ाई	–2-1/7 राजू
9 ग्रैवेयक, 9 अनुदिश, 5 अनुत्तर एवं सिद्धशिला तक चौड़ाई	–1 राजू

अपने-अपने अंतिम इन्द्रक विमान संबंधी ध्वजदण्ड के अग्रभाग तक उन-उन स्वर्गों का अंत समझना चाहिए और लोक का जो अंत है, वही कल्पातीत भूमि का भी अंत है।

जैन सिद्धांत में 8 पृथ्वी मानी गई हैं। 7 नरक की 7 पृथ्वी एवं 1 मोक्ष-पृथ्वी, ऐसे पृथ्वी के 8 भेद हैं।

वातवलयों का वर्णन

इस लोकाकाश को चारों तरफ से वेष्टित करके तीन वातवलय हैं। ये वायुकायिक जीवों के शरीर स्वरूप हैं। यद्यपि वायु अस्थिर स्वभाव वाली है फिर भी ये तीनों वातवलय स्थिर स्वभाव वाले वायुमण्डल हैं। इनके (1) घनोदधिवातवलय (2) घनवातवलय एवं (3) तनुवातवलय ये तीन भेद हैं।

घनोदधिवात गोमूत्र वर्ण वाला है, घनवात मूंग के समान वर्ण वाला एवं तनुवात अनेक वर्ण वाला है। चारों तरफ से लोक को वेष्टित करके सर्व प्रथम घनोदधिवातवलय स्थित है, इस घनोदधि को वेष्टित करके घनवात एवं घनवात को वेष्टित करके तनुवातवलय स्थित हैं। तनुवातवलय के चारों तरफ अनंत अलोकाकाश है।

आठ पृथ्वियों के नीचे तलभाग में 1 राजू की ऊँचाई तक इन तीनों वायुमण्डलों में से प्रत्येक की मोटाई बीस हजार योजन प्रमाण है। सातवें नरक में पृथ्वी के पार्श्व भाग में क्रम से इन तीनों वातवलयों की मोटाई सात, पाँच और चार योजन है। इसके ऊपर मध्यलोक के पार्श्व भाग में पाँच, चार और तीन योजन प्रमाण है।

इसके आगे तीनों वायु की मोटाई ब्रह्मस्वर्ग के पार्श्व भाग में क्रम से 7, 5 और 4 योजन है तथा ऊर्ध्व लोक के अंत में – पार्श्व भाग में 5, 4 व 3 योजन प्रमाण है। लोक शिखर के ऊपर तीनों वातवलयों की मोटाई क्रमशः 2 कोस, 1 कोस और कुछ कम 1 कोस प्रमाण है अर्थात् – लोक के तल भाग से 1 राजू तक तीनों वातवलय बीस-बीस हजार योजन 20000+20000+20000=60000 योजन हैं।

सातवें नरक के पास – 7+5+4=16 योजन
मध्यलोक के पार्श्व भाग में – 5+4+3=12 योजन
ब्रह्म स्वर्ग के पार्श्व भाग में – 7+5+4=16 योजन
लोक के पार्श्व भाग में – 5+4+3=12 योजन
लोक के शिखर पर – 2 कोस, 1 कोस, 425 धनुष कम 1 कोस (1575 धनुष)

लोक का घनफल

यह लोक तल में 7 राजू, मध्य में 1, पाँचवें स्वर्ग में 5, और अंत में 1 राजू है। इन चारों स्थानों की चौड़ाई को जोड़ देने से 7+1+5+1=14 राजू हुए। इस 14 में 4 का भाग देने से 14÷4=3-1/2 राजू हुए। इसमें लोक के दक्षिण-उत्तर की मोटाई का गुणा कर देने से 3-1/2×7=24-1/2 हुए। फिर इस चौड़ाई और मोटाई के गुणनफल में 14 राजू का गुणा कर देने से 24-1/2×14=343 राजू हुये। इस लोकाकाश का घनफल 343 राजू प्रमाण है।

अधोलोक का घनफल

लोक के नीचे पूर्व-पश्चिम चौड़ाई 7 राजू और मध्यलोक में 1 राजू इन दोनों को मिलाने से 7+1=8 राजू हुए। पुनः इसे आधा करने से 8÷2=4, इसमें दक्षिण-उत्तर की मोटाई 7 राजू का गुणा करने से 4×7=28 राजू हुये। इसमें अधोलोक की ऊँचाई 7 राजू से गुणा करने से 28×7=196 राजू हुए। यह अधोलोक का घनफल है।

ऊर्ध्वलोक का घनफल

मध्यलोक में पूर्व-पश्चिम दिशा की चौड़ाई 1 राजू, आगे ब्रह्म स्वर्ग के पास 5 राजू, दोनों को मिलाने से 1+5=6 राजू हुए। इसे आधा करके 6×2=3, दक्षिण-उत्तर की मोटाई 7 राजू से गुणा करके 3×7=21 हुए, इसमें ब्रह्मस्वर्ग तक की ऊँचाई 3-1/2 राजू का गुणा करके 21×3-1/2=73-1/2 राजू हुए। यह मध्यलोक से ब्रह्म स्वर्ग तक का घनफल है और इतना ही ब्रह्मस्वर्ग से आगे लोक के अन्त का घनफल है, अतः 73-1/2 = 73-1/2=147 राजू प्रमाण संपूर्ण ऊर्ध्व लोक का घनफल हुआ है।

अधोलोक का घनफल 196 और ऊर्ध्वलोक का 147 राजू है। दोनों को मिला देने से 196+147=343 राजू प्रमाण सारे लोक का घनफल होता है।

इस प्रकार लोकाकाश का घनफल 343 राजू प्रमाण है।

त्रस नाली का वर्णन

लोक के बहुमध्य भाग में एक राजू चौड़ी, एक राजू मोटी और कुछ कम 13 राजू ऊँची त्रसनाली है, जो कि त्रस जीवों का निवास क्षेत्र है, अर्थात् इस त्रसनाली के भीतर ही त्रस जीव पाये जाते हैं बाहर नहीं। तेरह राजू में कुछ कम जो कहा है उस कमी का प्रमाण–

32162241-2/3 धनुष कम 13 राजू।

इस त्रसनाली के बाहर भी उपपाद, मारणांतिकसमुद्घात और केवलीसमुद्घात इन तीन अपेक्षाओं से त्रस जीवों का अस्तित्व पाया जाता है।

उपपाद–किसी भी विवक्षित भव के प्रथम समय की पर्याय को उपपाद कहते हैं। लोक के अंतिम वातवलय में स्थित कोई जीव मरण करके विग्रहगति द्वारा त्रसनाली में त्रस पर्याय से उत्पन्न होने वाला है, वह जीव जिस समय मरण करके प्रथम मोड़ा लेता है, उस समय त्रस नाम कर्म का उदय आ जाने से त्रस पर्याय को धारण करने पर भी त्रसनाली के बाहर है। इसलिये उपपाद की अपेक्षा त्रस जीव त्रसनाली के बाहर रहता है।

मारणांतिक समुद्घात–त्रसनाली में स्थित किसी जीव ने अंतर्मुहूर्त पहले मारणांतिक समुद्घात के द्वारा त्रसनाली के बाहर के प्रदेशों का स्पर्श किया क्योंकि उसको मरण करके वहीं स्थावर में उत्पन्न होना है तो उस समय में भी त्रस जीव का अस्तित्व त्रस नाली के बाहर पाया जाता है।

केवली समुद्घात–जब आयु कर्म की स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र ही बाकी हो परन्तु नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म की स्थिति अधिक हो तब सयोगकेवली भगवान् के दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात होता है और ऐसा होने से तीनों कर्मों की स्थिति भी आयु कर्म के बराबर हो जाती है। इन तीनों अवस्थाओं में त्रस जीव त्रसनाली के बाहर भी पाये जाते हैं।

अधोलोक

अधोलोक में सबसे पहली मध्यलोक से लगी हुई 'रत्नप्रभा' पृथ्वी है। इसके कुछ कम एक राजु नीचे 'शर्कराप्रभा' है। इसी प्रकार से एक-एक के नीचे बालुका प्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा भूमियाँ हैं। ये सात पृथ्वियाँ छह राजु में हैं और अंतिम सातवें राजु में निगोद स्थान हैं।

नरकों के दूसरे नाम–घम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी ये इन पृथ्वियों के अनादिनिधन नाम हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी के 3 भाग हैं–खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग। खरभाग और पंकभाग में भवनवासी तथा व्यंतरवासी देवों के निवास हैं और अब्बहुलभाग में प्रथम नरक के बिल हैं, जिनमें नारकियों के आवास हैं।

नरकों के बिलों की संख्या–सातों नरकों के बिलों की संख्या चौरासी लाख प्रमाण है। प्रथम पृथ्वी के 30 लाख, द्वितीय के 25 लाख, तृतीय के 15 लाख, चतुर्थ के 10 लाख, पाँचवीं के 3 लाख, छठी के 5 कम 1 लाख एवं सातवीं पृथ्वी के 5 बिल हैं।

उष्ण और शीतबिल–पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी पृथ्वी के सभी बिल एवं पाँचवीं पृथ्वी के एक चौथाई भाग प्रमाण बिल अत्यन्त उष्ण होने से नारकियों को तीव्र गर्मी की

बाधा पहुँचाने वाले हैं। पाँचवीं पृथ्वी के अवशिष्ट एक चौथाई भाग प्रमाण बिल और छठी, सातवीं पृथ्वी के सभी बिल अत्यन्त शीत होने से नारकी जीवों को भयंकर शीत की वेदना देने वाले हैं। यदि उष्ण बिल में मेरु के समान लोहे का गोला डाल देवें तो वह गलकर पानी हो जावे, ऐसे ही शीत बिलों में मेरु पर्वतवत् लोह पिंड विलीन हो जावे।

नरक में उत्पत्ति के दुःख—नारकी जीव महापाप से नरक बिल में उत्पन्न होकर एक मुहूर्त काल में छहों पर्याप्तियों को पूर्ण कर छत्तीस आयुधों के मध्य में औंधे मुँह गिरकर वहाँ से गेंद के समान उछलता है। प्रथम पृथ्वी में नारकी सात योजन, छह हजार, पाँच सौ धनुष प्रमाण ऊपर को उछलता है। इसके आगे शेष नरकों में उछलने का प्रमाण दूना-दूना है।

नरक की मिट्टी—कुत्ते, गधे आदि जानवरों के अत्यन्त सड़े हुए मांस और विष्ठा आदि की अपेक्षा भी अनन्तगुणी दुर्गन्धि से युक्त वहाँ की मिट्टी है, जिसे वे नारकी भक्षण करते हैं। यदि सातवें नरक की मिट्टी का एक कण भी यहाँ आ जावे, तो यहाँ के पच्चीस कोस तक के जीव मर जावें।

नरक के दुःख—वे नारकी परस्पर में चक्र, बाण, शूली, करोंत आदि से एक दूसरे को भयंकर दुःख दिया करते हैं। एक मिनट भी आपस में शांति को प्राप्त नहीं करते हैं। करोंत से चीरना, कुम्भीपाक में पकाना आदि महान दुःखों का सामना करते हुए उन जीवों की मृत्यु भी नहीं हो सकती। जब आयु पूर्ण होती है, तभी वे मरते हैं।

नारकियों की आयु—

नरक	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु
1	10 हजार वर्ष	1 सागर
2	1 सागर	3 सागर
3	3 सागर	7 सागर
4	7 सागर	10 सागर
5	10 सागर	17 सागर
6	17 सागर	22 सागर
7	22 सागर	33 सागर

नरक में जाने वाले जीव—कर्मभूमि के पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य ही इन नरकों में जाते हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच पहले नरक तक, सरीसृप दूसरे नरक तक, पक्षी तृतीय नरक तक, भुजंग चतुर्थ नरक तक, सिंह पाँचवें तक, स्त्रियाँ छठे तक, मत्स्य और मनुष्य सातवें तक जाते हैं।

नरक में सम्यक्त्व के कारण—तीसरे नरक तक के नारकी कोई जाति-स्मरण से, कोई दुर्वार वेदना से, कोई देवों के सम्बोधन को प्राप्त कर अनन्त भवों को चूर्ण करने में समर्थ सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर लेते हैं। शेष चार नरकों के नारकी जातिस्मरण और वेदना अनुभव से सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेते हैं।

नरक में नारकी के मस्तक आदि सभी अवयव करोड़ों रोगों से जर्जरित रहते हैं। नरक में नारकियों के एक साथ ही 5 करोड़ 68 लाख 99 हजार 5 सौ 84 रोग उदय में बने रहते हैं।

नारकियों का आहार और मिट्टी के दोष

कुत्ते, गधे आदि जानवरों के अत्यन्त सड़े हुए माँस और विष्टा आदि की अपेक्षा भी अनंतगुणी दुर्गंधि से युक्त ऐसी उस नरक की मिट्टी को घम्मा नरक के नारकी अत्यन्त भूख की वेदना से व्याकुल होकर भक्षण करते हैं और दूसरे आदि नरकों में उससे भी अधिक गुणी अशुभ दुर्गंधित मिट्टी को खाते हैं। घम्मा पृथ्वी के प्रथम पटल के आहार की मिट्टी को यदि इस मध्य लोक में डाल दिया जाए तो उसकी दुर्गंधि से 1 कोस पर्यंत के जीव मृत्यु को प्राप्त हो सकते हैं। इससे आगे दूसरे, तीसरे आदि पटलों में आधे-आधे कोस प्रमाण अधिक होते हुए मारण शक्ति बढ़ती गई है और सातवें नरक के अन्तिम उन्चासवें पटल में मिट्टी की मारण शक्ति 25 कोस प्रमाण हो जाती है।

तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके नरक जाने वालों का वर्णन

कोई-कोई जीव इस मध्यलोक में तीर्थंकर प्रकृति के बंध के पहले यदि नरकायु का बंध कर लेते हैं तो पहले, दूसरे या तीसरे नरक तक जा सकते हैं वें तीर्थकर प्रकृति के सत्त्व वाले जीव भी वहाँ पर असाधारण दुःखों का अनुभव करते रहते हैं और सम्यक्त्व के माहात्म्य से पूर्वकृत कर्म के विपाक का चिंतवन करते रहते हैं। जब इनकी आयु 6 महीने अवशेष रह जाती है तब स्वर्ग के देव नरक में जाकर चारों तरफ के परकोटा बनाकर उस नारकी के उपसर्ग का निवारण कर देते हैं और मध्यलोक में रत्नों की वर्षा, माता की सेवा आदि उत्सव होने लगते हैं।

नारकी के दुःखों के भेद

नरकों में नारकियों को चार प्रकार के दुःख होते हैं। क्षेत्र जनित, शारीरिक, मानसिक और असुरकृत्।

नरक में उत्पन्न हुए शीत, उष्ण, वैतरणी नदी, शाल्मलिवृक्ष आदि के निमित्त से होने वाले दुःख क्षेत्रज दुःख कहलाते हैं।

शरीर में उत्पन्न हुए रोगों के दुःख और मार-काट, कुंभीपाक आदि के दुःख शारीरिक दुःख है।

संक्लेश, शोक, आकुलता, पश्चात्ताप आदि के निमित्त से उत्पन्न दुःख मानसिक दुःख कहलाते हैं।

एवं तीसरी पृथ्वी पर्यंत संक्लेश परिणाम वाले असुरकुमार जाति के भवनवासी देवों के द्वारा उत्पन्न कराये गये दुःख असुरकृत् दुःख कहलाते हैं।

असुरकुमारकृत दुःखों का वर्णन

पूर्व में देवायु का बंध करने वाले मनुष्य या तिर्यंच अनंतानुबंधी में से किसी एक का उदय आ जाने से रत्नत्रय को नष्ट करके असुरकुमार जाति के देव होते हैं। सिकनानन, असिपत्र, महाबल, रुद्र, अंबरीष आदिक असुरकुमार जाति के देव तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी तक जाकर नारकियों को क्रोध उत्पन्न करा-करा कर परस्पर में युद्ध कराते हैं और प्रसन्न होते हैं।

नरक में अवधिज्ञान का वर्णन

नरक में उत्पन्न होते ही अंतर्मुहूर्त के बाद छहों पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जाती हैं और भवप्रत्यय अवधिज्ञान प्रगट हो जाता है। जो मिथ्यादृष्टी नारकी हैं उनका अवधिज्ञान विभंगावधि– कुअवधि कहलाता है एवं सम्यक्दृष्टि नारकियों का ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है।

मांगीतुंगी पंचकल्याणक

संसार के सबसे बड़े महाजिनबिम्ब के

प्रथम महामस्तकाभिषेक में

अपने परिवार की ओर से

एक कलश अवश्य आरक्षित कराएँ

18 फरवरी 2016 से प्रारंभ महामस्तकाभिषेक कलशों की न्यौछावर राशि

कलश	न्यौछावर राशि	सदस्य संख्या	निःशुल्क आवास व्यवस्था
1. महादिव्य कलश	5,00,000/-रु.	11	6 बेड का 2 अटैच कमरा
2. दिव्य कलश	2,51,000/-रु.	9	6 बेड का 2 अटैच कमरा
3. रत्न कलश	1,00,000/-रु.	7	6 बैड का अटैच कमरा
4. स्वर्ण कलश	51,000/-रु.	5	4 बैड का अटैच कमरा
5. रजत कलश	25,000/-रु.	4	4 बैड का अटैच कमरा (दो दिन के लिए)
6. भक्ति कलश	11,000/-रु.	3	2 बैड का अटैच कमरा (दो दिन के लिए)
7. श्रद्धा कलश	5,100/-रु.	2	2 बैड का अटैच कमरा (दो दिन के लिए)

मांगीतुंगी पंचकल्याणक

108 फुट विशालकाय भगवान ऋषभदेव प्रतिमा के

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-11 से 17 फरवरी 2016

ऐतिहासिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव में

इन्द्र-इन्द्राणी बनने का स्वर्णिम अवसर अवश्य प्राप्त करें-

1. ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर आदि मुख्य इन्द्र - 5,51,000/-रु. प्रत्येक
2. इन्द्र-प्रथम श्रेणी - 1,00,000/-रु.प्रत्येक
3. इन्द्र-द्वितीय श्रेणी - 51,000/-रु. प्रत्येक

न्यौछावर राशि जमा करने हेतु- खाते का नाम-B.R.P.P.M. Samiti Mangitungi
बैंक-P.N.B., A/c-3704002100007589 (IFSC Code-PUNB0370400), शाखा-हस्तिनापुर
बैंक-S.B.I., A/c-34736237114 (IFSC Code-SBIN0002353), शाखा-हस्तिनापुर
नोट -राशि जमा करने के उपरांत मोबाइल पर पूर्ण जानकारी अवश्य देवें-09405232010, 09405232013

चरणानुयोग

णमोकार मंत्र एवं चत्तारि मंगल पाठ
(अनादिनिधन है)

प्रस्तुति–गणिनीप्रमुख आर्यिका ज्ञानमती

महामंत्र णमोकार मंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं। णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।1।।

इस महामंत्र को णमोकार मंत्र, अपराजित मंत्र, अनादि मंत्र व सार्वभौम मंत्र भी कहते हैं।

आज के उपलब्ध सम्पूर्ण जैन वाङ्मय में दो ही मंत्र अनादिनिधन मान्य हैं– 1. **णमोकार महामंत्र, 2. चत्तारि मंगल पाठ।**

श्रीमान् उमास्वामी आचार्य ने कहा है–

ये केचनापि सुषमाद्यरका अनन्ता, उत्सर्पिणी-प्रभृतयः प्रययुर्विवर्ताः। तेष्वप्ययं परतरं प्रथितं पुरापि, लब्ध्वैनमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः।।3।।

श्लोकार्थ–उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि के जो सुषमा, दुःषमा आदि अनन्तयुग पहले व्यतीत हो चुके हैं, उनमें भी यह णमोकार मंत्र सबसे अधिक महत्वशाली प्रसिद्ध हुआ है। मैं संसार से बहिर्भूत (बाहर) मोक्ष प्राप्त करने के लिए उस णमोकार मंत्र को नमस्कार करता हूँ।

'णमोकार मंत्रकल्प' में श्री सकलकीर्ति भट्टारक ने भी कहा है-

महापंचगुरोर्नाम, नमस्कारसुसम्भवम्।
महामंत्रं जगज्जेष्ठ-मनादिसिद्धमादिदम्।।63।।

महापंचगुरूणां, पंचत्रिंशदक्षरप्रमम्।
उच्छ्वासैस्त्रिभिरेकाग्र-चेतसा भवहानये।।68।।

श्लोकार्थ–नमस्कार मंत्र में रहने वाले पाँच महागुरुओं के नाम से निष्पन्न यह महामंत्र जगत् में ज्येष्ठ–सबसे बड़ा और महान है, अनादिसिद्ध है और आदि अर्थात् प्रथम है।।63।।

पाँच महागुरुओं के पैंतीस अक्षर प्रमाण मंत्र को तीन श्वासोच्छ्वासों में संसार भ्रमण के नाश हेतु एकाग्रचित्त होकर सभी भव्यजनों को जपना चाहिए अथवा ध्यान करना चाहिए।।68।।

श्री गौतम स्वामी ने पाक्षिक प्रतिक्रमण में कुछ पंक्तियाँ ऐसी रखी हैं, जिनसे भी स्पष्ट है कि यह महामंत्र व चत्तारिमंगल पाठ अनादिकालीन हैं। यथा–

''काऊण णमोक्कारं, अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
आइरिय-उवज्झायाणं, लोयम्मि य सव्वसाहूणं।।''

''णमोक्कारपदे अरहंतपदे सिद्धपदे आयरियपदे उवज्झायपदे साहुपदे मंगलपदे लोगोत्तमपदे सरणपदे।।''
(पाक्षिक प्रतिक्रमण)

–पद्यानुवाद-

अरिहंतों को कर नमस्कार सिद्धों को नमस्कार करके। आचार्य उपाध्याय को व लोक में सर्वसाधु को भी नमते।। जो नमस्कार पद अर्हत् पद अरु सिद्धपदाचार्य पद में। उपाध्याय साधूपद मंगल-लोकोत्तम शरणं पद में।।

'णमोक्कार पदे' आदि दण्डक सूत्रों में णमोकार पद में अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुपद ये पांच पद हैं तथा मंगलपद, लोकोत्तमपद व शरणपद से चत्तारि मंगल पाठ आ जाता है क्योंकि चत्तारि मंगल पाठ में—चत्तारि मंगलं, चत्तारि लोगुत्तमा और चत्तारि सरणं पद ही मुख्य है।

षट्खण्डागम धवला टीका पुस्तक 9 में कालशुद्धि में साधुओं के लिए श्वासोच्छ्वासपूर्वक महामंत्र जपने का विधान है। इससे भी स्पष्ट होता है इस महामंत्र को श्वासोच्छ्वासपूर्वक जपने की विधि अनादि है।

यथा—महामंत्र को 108 बार जपने से 300 (324) श्वासोच्छ्वास हो जाते हैं। इस एक जाप्य से एक उपवास का फल प्राप्त होता है। ऐसा शास्त्रों में वर्णित हैं।

अत्र कालशुद्धिकरणविधानमभिधास्ये। तं जहा—पच्छिमरत्तिसज्झायं खमाविय बहिं णिक्कलिय पासुवे भूमिपदेसे काओसग्गेण पुव्वाहिमुहो ट्ठाइदूण णवगाहापरियट्ठणकालेण पुव्वदिसं सोहिय पुणो पदाहिणेण पल्लट्ठिय एदेणेव कालेण जम-वरुण-सोमदिसासु सोहिदासु छत्तीसगाहुच्चारणकालेण (36) अट्ठसदुस्सासकालेण वा कालसुद्धी समप्पदि (108)। अवरण्हे वि एवं चेव कालसुद्धी कायव्वा। णवरि एक्केक्काए दिसाए सत्त-सत्तगाहापरियट्ठणेण परिच्छिण्णकाला त्ति णायव्वा। एत्थ सव्वगाहापमाणमट्ठावीस (28) चउरासीदिउस्सासा (84)। पुणो अणत्थमिदे दिवायरे खेत्तसुद्धिं कादूण अत्थमिदे कालसुद्धिं पुव्वं व कुज्जा। णवरि एत्थ कालो वीसगाहुच्चारणमेत्तो (20)

सट्ठिउस्सासमेत्तो वा (60)। अवररत्ते णत्थि वायणा, खेत्तसुद्धिकरणोवायाभावादो। ओहि-मणपज्जवणाणीणं सयलंगसुदधराण–मागासट्ठियचारणाणं मेरु-कुलसेलगब्भट्ठिय-चारणाणं च अवररत्तियवाचणा वि अत्थि अव–गयखेत्त-सुद्धीदो। अवगयराग-दोसाहंकारट्ठ-रुद्दज्झाणस्स पंचमहव्व-यकलिदस्स तिगुत्तिगुत्तस्स णाण-दंसण-चरणादिचारणवड्ढिदस्स भिक्खुस्स भावसुद्धी होदि।''

यहाँ कालशुद्धि करने के विधान को कहते हैं। वह इस प्रकार है—पश्चिम रात्रि के स्वाध्याय को समाप्त करके बाहर निकलकर प्रासुक भूमि प्रदेश में कायोत्सर्ग से पूर्वाभिमुख स्थित होकर नौ गाथाओं के उच्चारणकाल से पूर्व दिशा को शुद्ध करके फिर प्रदक्षिणरूप से पलटकर इतने ही काल से दक्षिण, पश्चिम व उत्तर दिशाओं को शुद्ध कर लेने पर छत्तीस 36 गाथाओं के उच्चारणकाल से अथवा एक सौ आठ 108 उच्छ्वासकाल से कालशुद्धि समाप्त होती है। अपराण्हकाल में भी इसी प्रकार ही कालशुद्धि करना चाहिए। विशेष इतना है कि इस समय की कालशुद्धि एक-एक दिशा में सात-सात गाथाओं के उच्चारणकाल से सीमित है, ऐसा जानना चाहिए। यहाँ सब गाथाओं का प्रमाण अट्ठाईस 28 अथवा उच्छ्वासों का प्रमाण चौरासी 84 है। पश्चात् सूर्य के अस्त होने से पहले क्षेत्रशुद्धि करके सूर्य के अस्त हो जाने पर पूर्व के समान कालशुद्धि करना चाहिए। विशेष इतना है कि यहाँ काल बीस 20 गाथाओं के उच्चारण प्रमाण अथवा साठ 60 उच्छ्वास प्रमाण है। अपररात्रि अर्थात् रात्रि के पिछले भाग में वाचना नहीं है, क्योंकि उस समय क्षेत्रशुद्धि करने का कोई उपाय नहीं है। अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, समस्त अंगश्रुत के धारक, आकाशस्थित चारण तथा मेरु व कुलाचलों के मध्य में स्थित चारण ऋषियों के अपररात्रिक वाचना भी है, क्योंकि वे क्षेत्रशुद्धि से रहित हैं अर्थात् भूमि पर न रहने से उन्हें क्षेत्रशुद्धि करने की आवश्यकता नहीं होती। राग, द्वेष, अहंकार, आर्त व रौद्र ध्यान से रहित, पाँच महाव्रतों से युक्त, तीन गुप्तियों से रक्षित तथा ज्ञान, दर्शन व चारित्र आदि आचार से वृद्धि को प्राप्त भिक्षु के भावशुद्धि होती है।

चत्तारिमंगल पाठ (अनादि निधन है)

चत्तारि मंगलं–अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि। ह्रौं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा। अनादि सिद्धमंत्रः।

(हस्तलिखित वसुनंदि प्रतिष्ठासार संग्रह)

इसलिए ये महामंत्र और चत्तारि मंगल पाठ अनादि निधन है, ऐसा स्पष्ट है।

वर्तमान में विभक्ति लगाकर 'चत्तारिमंगल पाठ'–नया पाठ पढ़ा जा रहा है। जो कि विचारणीय है।

परिवर्तित पाठ–नया पाठ–

चत्तारि मंगलं–अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहूं मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा–अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंत शरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

यह पाठ लगभग 40 वर्षों से अपनी दिगम्बर जैन परम्परा में आया है। देखें प्रमाण–'ज्ञानार्णव' जैसे प्राचीन ग्रंथ में बिना विभक्ति का प्राचीन पाठ ही है। यह विक्रम सम्वत् 1963 से लेकर कई संस्करणों में वि.सं. 2054 तक में प्रकाशित है। पृ. 309 पर यही प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठातिलक जो कि वीर सं. 2451 में सोलापुर से प्रकाशित है, उसमें पृष्ठ 40 पर यही प्राचीन पाठ है। आचार्य श्री वसुविंदु-अपरनाम जयसेनाचार्य द्वारा रचित 'प्रतिष्ठापाठ' जो कि वीर सं. 2452 में प्रकाशित है। उसमें पृ. 81 पर प्राचीन पाठ ही है। हस्तलिखित 'श्री वसुनंदिप्रतिष्ठापाठ संग्रह' में भी प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठासारोद्धार जो कि वीर सं. 2443 में छपा है, उसमें भी यही पाठ है। 'क्रियाकलाप' जो कि वीर सं. 2462 में छपा है, उसमें भी तथा जो 'सामायिकभाष्य' श्री प्रभाचंद्राचार्य द्वारा 'देववंदना' की संस्कृत टीका है, उसमें भी अरहंत मंगलं-अरहंत लोगुत्तमा,..... अरहंत सरणं पव्वज्जामि, यही पाठ है पुनः यह संशोधित नया पाठ क्यों पढ़ा जाता है। क्या ये पूर्व के आचार्य व्याकरण के ज्ञाता नहीं थे? इन आचार्यों की कृति में परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन कहाँ तक उचित है ?

द्रव्यानुयोग

गौतम स्वामी उवाच-

यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा

प्रस्तुति–गणिनीप्रमुख आर्यिका ज्ञानमती

अमृतवर्षिणी टीका–

ज्ञान के भेद

ज्ञान के पांच भेद हैं–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान।

(1) मतिज्ञान—

मतिज्ञान के चार भेद हैं–अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

अवग्रह–इन्द्रिय और पदार्थ का संबंध होते ही जो सामान्य ग्रहण होता है उसे दर्शन कहते हैं। दर्शन के अनन्तर जो पदार्थ का प्रथम ग्रहण होता है वह अवग्रह है। जैसे चक्षु इन्द्रिय के द्वारा 'यह शुक्लरूप है' ऐसा जानना।

ईहा–अवग्रह के द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थ में उसके विशेष जानने की इच्छा ईहा है। जैसे जो शुक्लरूप देखा था 'वह बगुला' है या ध्वजा'।

अवाय–विशेष के निर्णय द्वारा जो यथार्थ ज्ञान होता है उसे अवाय कहते हैं। जैसे पंख आदि फड़फड़ाने से जान लेना 'यह बगुला ही है।'

धारणा–जानी हुई वस्तु को कालान्तर में न भूलना धारणा है। इस धारणा से ही कालान्तर में स्मृति आदि होती है।

इन अवग्रह आदि ज्ञानों के विषय बारह प्रकार के हैं। बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव, अल्प, अल्पविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुव।

बहुत वस्तुओं के ग्रहण को बहुज्ञान कहते हैं। जैसे सेना या वन को एक समूहरूप में ग्रहण करना 'बहु' ज्ञान है।

हाथी, घोड़े या आम आदि अनेक भेदों को जानना बहुविध ज्ञान है।

वस्तु के एकदेश को देखकर सम्पूर्ण को जानना अनिःसृत है। जैसे तालाब में डूबे हाथी की सूंड को देखकर हाथी को जान लेना।

शीघ्रता से जाती हुई वस्तु को जान लेना क्षिप्र ज्ञान है। जैसे तेजी से चलती हुई रेलगाड़ी को जानना।

बिना कहे भी अभिप्राय को जान लेना अनुक्त है।

बहुत काल तक जैसे का तैसा ज्ञान रहना ध्रुव है। ऐसे ही अल्प-अल्पविध आदि को समझ लेना।

इस प्रकार से अवग्रह के बारह भेद होते हैं। ऐसे ही ईहा, अवाय, धारणा के बारह-बारह भेद होने से सब अड़तालीस भेद हो जाते हैं तथा इनमें से प्रत्येक ज्ञान पांच इन्द्रिय और मन से होता है अतः 48 को 6 से गुणा करने पर मतिज्ञान के 288 भेद हो जाते हैं।

ये 288 भेद अर्थावग्रह की अपेक्षा से हैं।

अर्थात् अवग्रह के दो भेद हैं-अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह।

पदार्थ को ऐसा स्पष्ट जानना जिसके बाद ईहा, अवाय और धारणा हो सकें वह अर्थावग्रह है।

जो अवग्रह अस्पष्ट हो, जिसके बाद ईहा, अवाय, धारणा न हो सकें वह व्यञ्जनावग्रह है।

व्यञ्जनावग्रह, चक्षुइन्द्रिय और मन के द्वारा नहीं होता है, शेष चार इन्द्रियों से बारह प्रकार के पदार्थों का होता है अतः व्यञ्जनावग्रह के 12×4=48 भेद होते हैं।

इस तरह अर्थावग्रह की अपेक्षा 288 और व्यञ्जनावग्रह की अपेक्षा 48 ऐसे मिलकर 288+48=336 भेद मतिज्ञान के होते हैं।

व्यञ्जनावग्रह यदि बार-बार होता है तो वह अर्थावग्रह हो जाता है फिर उसके ऊपर ईहा, अवाय और धारणा ज्ञान हो जाते हैं। जैसे मिट्टी के कोरे सकोरे पर 1-2 बूंद जल तत्काल सूख जाता है। यदि लगातार जल की बूंदे गिरती रहें तो वह सकोरा गीला हो जाता है। यह अर्थावग्रह का दृष्टान्त है।

(2) श्रुतज्ञान–जो ज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है वह श्रुतज्ञान है। इसके ग्यारह अंग, चौदह पूर्व रूप से भेद माने गये हैं अथवा प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के भेद से चार भेद माने हैं। इन चारों अनुयोगों में सम्पूर्ण द्वादशांग का सार आ जाता है।

प्रथमानुयोग–किसी एक महापुरुष के चरित का प्रतिपादन करने वाला, त्रेसठ शलाका पुरुषों के चरित का वर्णन करने वाला पुण्य के कारणभूत, बोधि-समाधि के स्थानभूत प्रथमानुयोग है।

करणानुयोग–लोक-अलोक के विभाग को, दोनों कालों के परिवर्तन को और चारों गतियों को दर्पण के समान बतलाने वाला करणानुयोग है।

चरणानुयोग–गृहस्थों और मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के कारणों के प्रतिपादक शास्त्र चरणानुयोग कहलाते हैं।

द्रव्यानुयोग–जीव और अजीव तत्त्वों के, पुण्य और पाप को तथा बंध-मोक्ष के प्रतिपादक शास्त्र द्रव्यानुयोग कहलाते हैं।

(3) अवधिज्ञान–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा से रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानना अवधिज्ञान है। इसके तीन भेद हैं–देशावधि, परमावधि और सर्वावधि।

देशावधिज्ञान देवों के और नारकियों के होता है वह भवप्रत्यय है तथा क्षयोपशम के निमित्त से होने वाला अवधिज्ञान मनुष्य और तिर्यञ्चों में पाया जाता है वह गुणप्रत्यय कहलाता है। यह ज्ञान असंयत सम्यग्दृष्टि और देशविरत मनुष्यों में भी हो सकता है।

परमावधि और सर्वावधिज्ञान तद्भव मोक्षगामी चरम शरीरी मुनियों को ही होते हैं।

(4) मनःपर्ययज्ञान–मनःपर्यय ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला ज्ञान मनःपर्यय ज्ञान है। यह ज्ञान मानुषोत्तर पर्वत के अन्तर्गत पर के मन में स्थित पदार्थों को स्पष्ट जान लेता है। इसके दो भेद हैं–ऋजुमति और विपुलमति।

ऋजु अर्थात् सरल मन, वचन, काय के अर्थ को जानने वाला ऋजुमति है और कुटिल मन, वचन, कायगत अर्थ को जानने वाला विपुलमति है।

ऋजुमति ज्ञान होकर छूट भी सकता है किन्तु विपुलमति ज्ञान छूटता नहीं है। यह चरमशरीरी को ही होता है।

वैसे तो मनःपर्ययज्ञान वृद्धिंगत चारित्रधारी, किसी एक ऋद्धि वाले संयमी मुनि को ही होता है, सभी को नहीं हो सकता है।

(5) केवलज्ञान–जगत्त्रय, कालत्रयवर्ती, समस्त पदार्थों को युगपत् जानने वाला केवलज्ञान है। इस केवलज्ञान रूपी दर्पण में सम्पूर्ण लोकाकाश और अलोकाकाश एक साथ झलकता है।

धर्म, अधर्म आदि सर्वद्रव्य और उन द्रव्यों की त्रिकालवर्ती सर्व पर्यायों को केवलज्ञान जानता है। जीव अनन्तानन्त हैं, जीव से अनन्तगुणे अणु-स्कन्ध भेद से युक्त पुद्गल द्रव्य हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये असंख्येय हैं। इन चारों की तीन काल सम्बन्धी पृथक्-पृथक् अनन्तानन्त पर्यायें हैं। उन सब द्रव्यों और उनकी सर्व त्रिकालवर्ती अनन्त पर्यायों को अनन्त महिमा वाला केवलज्ञान एक साथ जानता है।

जो केवल–एक, अतीन्द्रिय और पर सहाय की अपेक्षा से रहित है वह केवलज्ञान स्वभावज्ञान है।

इसी का विस्तार-अर्थीजन जिस लिये बाह्य-अभ्यंतर चारित्र का सेवन करते हैं-आचरण करते हैं वह केवलज्ञान है।

श्री भट्टाकलंक देव ने भी कहा है–

जिसकी इच्छा रखने वाले–जिसके लिए वचन, मन और काय के आश्रित, बाह्य-आभ्यन्तर ऐसी उभयरूप जिन तपश्चरण की क्रियाओं का सेवन करते हैं, उसी का नाम केवलज्ञान है।

यह स्वभावज्ञान इन्द्रियों से रहित अतीन्द्रिय है, क्योंकि यह इन्द्रिय और मन के व्यापार से रहित है। यह इंद्रियज्ञान आकाश आदि अमूर्त पदार्थों में, देश से जिसमें व्यवधान है ऐसे अर्थात् अतिदूरवर्ती मेरुपर्वत आदि में, काल से जिसमें अन्तराल पड़ चुका है ऐसे अतीत और अनागत कालवर्ती राम-रावण, महापद्म तीर्थंकर आदि में, स्वभाव से अन्तरित–नहीं दिखने वाले ऐसे भूत, पिशाच आदि में और उसी प्रकार अतिसूक्ष्म पर के मन की प्रवृत्ति, पुद्गल-परमाणु आदि विषयों में प्रवृत्ति नहीं कर सकता है। दूसरी बात यह है कि ये इन्द्रियाँ स्थूल, मूर्तिक, मर्यादित और वर्तमानकाल के अपने-अपने विषयों को ही ग्रहण करती हैं, किन्तु अतींद्रिय ज्ञान तीन लोक के अन्तर्गत स्थूल, सूक्ष्म, मूर्तिक, अमूर्तिक, अनन्त पदार्थों को तथा भूत, वर्तमान और भविष्यत्कालीन सभी पदार्थों को भी एक साथ ही जान लेता है, क्योंकि उसमें क्रम का व्यवधान और इन्द्रियों का व्यवधान नहीं हैं।

इसी बात को प्रवचनसार में कहा है—

"जो ज्ञान अप्रदेशी, सप्रदेशी, मूर्त, अमूर्त ऐसे सभी पदार्थ को तथा जो पर्यायें अभी नहीं हुई हैं ऐसी अनागत एवं जो पर्यायें नष्ट हो चुकी हैं ऐसी अतीत सभी पर्यायों को जानता है वह ज्ञान अनिन्द्रिय कहा गया है।"

इसी का विस्तार यह है कि जो ज्ञान कालाणु, परमाणु आदि अप्रदेशी द्रव्यों को, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश आदि सप्रदेशी द्रव्यों को, मूर्तिक-पुद्गल द्रव्य को और कर्मबन्धन से बद्ध हुए की अपेक्षा संसारी जीव-समूह को, अमूर्तिक-शुद्धजीव द्रव्य को और पुद्गल से अतिरिक्त शेष अचेतन द्रव्यों को भी जानता है, उसी प्रकार जो पर्यायें अभी नहीं हुई हैं ऐसी भविष्यत्कालीन और जो नष्ट हो चुकी हैं ऐसी अतीतकालीन पर्यायों को अर्थात् त्रिकालगत सभी पर्यायों सहित संपूर्ण ज्ञेयपदार्थों को जानता है, वह ज्ञान जैनशासन में अतीन्द्रिय कहा गया है, ऐसे

केवलज्ञान में तीनों लोक गोष्पद के समान लघु प्रतीत होते हैं।

भावार्थ–यहाँ तक ज्ञान के पाँचों भेदों का संक्षिप्त वर्णन किया है। यहाँ पर वर्णित श्रुतज्ञान द्वादशांगरूप से कहा गया है। इसके पहले इसमें पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास आदि बीस भेद बताये हैं। उनमें से मात्र अक्षरज्ञान ही कुछ रूप में हमें और आपको प्राप्त है। द्वादशांग श्रुतज्ञान श्रुतकेवली महामुनियों को ही होता है। आर्यिकाओं को ग्यारह अंग तक ज्ञान प्राप्त होने की व्यवस्था आगम में वर्णित है। यथा–

''एकादशांगभृज्जाता सार्यिकापि सुलोचना।।''

आर्यिका सुलोचना ने भगवान ऋषभदेव के समवसरण में ग्यारह अंगों तक का ज्ञान प्राप्त किया है।

श्रावक–श्राविकाओं को एवं क्षुल्लक, ऐलक व क्षुल्लिकाओं को अंग–पूर्व पढ़ने का निषेध आया है।

आगे देशावधि और इससे विपरीत मिथ्यादृष्टी के विभंगावधि या कुअवधिज्ञान नारकी और देवों में वहाँ की पर्यायजन्य–भवप्रत्यय नाम से होता है। श्रावकों के भी देशावधि ज्ञान हो सकता है जैसे कि भरत चक्रवर्ती को अवधिज्ञान हो गया था। तीर्थंकर भगवान के जन्म से ही मति, श्रुत, अवधि तीनों ज्ञानों में देशावधि ही होता है। आगे के परमावधि व सर्वावधिज्ञान मुनियों के ही होते हैं। मनःपर्ययज्ञान भी महामुनियों के ही हो सकता है।

केवलज्ञान–एक केवलज्ञान ही ऐसा ज्ञान है कि जिसमें पूरा तीनों लोक 'गौखुर' के समान झलकता है।

अतः भगवान महावीर के केवलज्ञान में संपूर्ण तीनों लोक एक छोटे से गड्ढे के समान प्रतीत होते थे। ऐसा यहाँ समझना है।

भजन

रचयित्री-आर्यिका चंदनामती

तर्ज-आने से जिसके.....

विश्वशांति कलश यात्रा का रथ, ऋषभदेव संदेश लाया है रथ,
सबसे बड़ी प्रतिमा का दर्शन कर लो-
मांगीतुंगी तीरथ का वंदन कर लो।।टेक.।।
राष्ट्र में महाराष्ट्र, प्रान्त गौरवमयी बन गया है।
ज्ञानमती माता से, दिव्य उपहार जो मिल गया है।।
ऋषभगिरी मांगीतुंगी में-2,
सबसे बड़ी प्रतिमा का दर्शन कर लो-
मांगीतुंगी तीरथ का वंदन कर लो।।विश्वशांति...।।1।।

हम सभी इस युग में, जन्मे हैं यही पुण्य भारी।
इक सौ आठ फुट की, प्रतिमा मिल गई हमको प्यारी।।
उसका प्रथम-उत्सव आया-2,
सबसे बड़ी प्रतिमा का दर्शन कर लो-
मांगीतुंगी तीरथ का वंदन कर लो।।विश्वशांति...।।2।।

संस्कृति व कला की, बेजोड़ कृती है यह प्रतिमा।
'चन्दनामति' अखंडित, एक पाषाण की पहली प्रतिमा।।
चलो भाई, चलो बहनों-2,
सबसे बड़ी प्रतिमा का दर्शन कर लो-
मांगीतुंगी तीरथ का वंदन कर लो।।विश्वशांति...।।3।।

मांगीतुंगी पंचकल्याणक

सम्पूर्ण भारत देश की समृद्धि हेतु समर्पित विश्व का महा-अनुष्ठान

जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर, वीतरागी, सर्वज्ञ एवं हितोपदेशी भगवान ऋषभदेव की संसार में सबसे ऊँची 108 फुट विशाल दिगम्बर जैन प्रतिमा का फरवरी 2016 में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव एवं महामस्तकाभिषेक विश्व शांति की मनोकामनाओं के साथ ही भारत देश में धन-धान्य की समृद्धि, आपसी सौहार्द्र, प्रेम, मैत्री तथा प्राणी अहिंसा के लिए समर्पित किया जा रहा है, जिसके प्रभाव से निश्चित ही देश में मानवीयता एवं उच्च संस्कारों का प्रसार वृद्धि को प्राप्त करेगा और जन- मानस की विचारधारा में मानव धर्म की प्रमुखता तथा आपसी अमन, चैन व शांति की भावनाएँ स्थापित होंगी। अतः आप सभी विश्वशांति के इस महा-अनुष्ठान में अवश्य भाग लेकर अपना जीवन धन्य करें।

राष्ट्रगौरव, गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

भारत की वसुन्धरा सदैव से तपस्या, त्याग एवं संयम की भूमि रही है। भगवान ऋषभदेव, राम, महावीर की यह भूमि आज भी ऐसे महान व्यक्तित्वों से सुशोभित है कि जो अपने जीवन में ही ऐतिहासिक बन जाते हैं।

ऐसा ही एक महान व्यक्तित्व है-वर्तमान दिगम्बर जैन समाज की सबसे प्राचीन दीक्षित साध्वी-पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी। सन् 1934 में शरदपूर्णिमा के दिन जिला बाराबंकी (उ.प्र.) के टिकैतनगर ग्राम में माता मोहिनी एवं पिता श्री छोटेलाल जैन के दाम्पत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में कन्यारत्न 'मैना' का जन्म हुआ। छोटी सी आयु से ही अपनी माँ की प्रेरणावश जैन ग्रंथों के स्वाध्याय द्वारा इस बालिका ने अपने वैराग्य को भलीभाँति दृढ़कर लिया और 18 वर्ष की अल्प आयु में शरदपूर्णिमा के दिन ही परिवार के प्रबल विरोध के बावजूद भी आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत एवं गृहत्याग के कठिन नियम धारण कर लिये। सन् 1953 में श्री महावीर जी (राज.) अतिशय क्षेत्र पर आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से आपने क्षुल्लिका दीक्षा लेकर 'वीरमती' नाम प्राप्त किया। पुनः 1956 में बीसवीं सदी के प्रथम आचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज की आज्ञानुसार उनके प्रथम पट्टाधीश शिष्य आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज से माधोराजपुरा (राज.) में आपने आर्यिका दीक्षा लेकर 'ज्ञानमती' नाम प्राप्त किया। ज्ञान प्राप्ति हेतु अध्ययन-अध्यापन एवं स्वाध्याय के प्रति आपकी विशेष अभिरुचि देखकर ही गुरुवर ने आपको यह नाम प्रदान किया था। दीक्षा के प्रारंभिक वर्षों में आपने सर्वप्रथम संस्कृत व्याकरण एवं जैन आगम का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया तथा साथ ही सहस्रनाम मंत्रों की रचनापूर्वक अपनी लेखनी का शुभारंभ भी कर दिया।

60 वर्षों से साधनारत इन महान साध्वी ने अब तक 250 से भी अधिक ग्रंथों का सृजन किया है। संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत, कन्नड़ इत्यादि भाषाओं की प्रकाण्ड विदुषी पूज्य माताजी की काव्य प्रतिभा भी अद्वितीय है। जिनेन्द्र भक्ति के रस से भरे हुए न जाने कितने ही पूजन-विधानों की रचना पूज्य माताजी ने अपनी लेखनी द्वारा की है। सन् 1995 में डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय (फैजाबाद) ने पूज्य माताजी की विराट ज्ञान साधना को देखकर जैन इतिहास में प्रथम बार किसी साध्वी को 'डी.लिट्.' की मानद् उपाधि प्रदान की।

कर्मठता, दृढ़संकल्प, अनुशासन के साथ-साथ वात्सल्य की प्रतिबिम्ब पूज्य माताजी की प्रेरणा से कौरवों-पाण्डवों की राजधानी हस्तिनापुर (मेरठ-उ.प्र.) में जैन भूगोल की अद्वितीय रचना-'जम्बूद्वीप' का निर्माण हुआ है।

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का भव्य निर्माण भी पूज्य माताजी की सृजनशक्ति का ही सुन्दर प्रतिफल है। इसी प्रकार भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) में नंद्यावर्त महल तीर्थ का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं ससंघ सानिध्य में मात्र 22 माह के अल्प अन्तराल में हुआ है।

2600 वर्ष पूर्व कुण्डलपुर (नालंदा) की जो धरती अहिंसा के अवतार भगवान महावीर के जन्मकल्याणक से महान उत्साह एवं हर्ष को प्राप्त हुई थी वह काल के थपेड़ों से भले ही विस्मृत जैसी हो गयी हो, परन्तु जैन समाज के श्रद्धालुओं का वहाँ जाना हमेशा से जारी रहा और अब पूज्य ज्ञानमती माताजी के महान उपकार स्वरूप यह जन्मभूमि पुनः इस प्रकार जगमगा उठी है कि आने वाला भविष्य सदैव इसकी चमक से प्रभावित रहेगा।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982) एवं भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ (1998) का देशव्यापी प्रवर्तन सम्पन्न हुआ एवं कुण्डलपुर से प्रवर्तित भगवान महावीर ज्योति रथ (2003) का प्रवर्तन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ है। इन रथों के द्वारा सम्पूर्ण भारत में अहिंसामयी सिद्धान्तों की व्यापक प्रभावना हुई।

शैक्षणिक क्षेत्र में अनेकानेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ-सेमिनार इत्यादि पूज्य माताजी की प्रेरणा द्वारा

समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं तथा आज भी हो रहे हैं। पूज्य माताजी के विराट व्यक्तित्व का अभिनंदन करने के लिए समाज ने उन्हें समय-समय पर युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, न्याय प्रभाकर, आर्यिकारत्न, गणिनीप्रमुख, युगनायिका, राष्ट्रगौरव, विश्वविभूति, वाग्देवी, भारतभूषण जैसी उपाधियों से सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया है। वर्तमान में महाराष्ट्र प्रान्त के मांगीतुंगी पर्वत पर विश्व की सबसे ऊँची 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा का निर्माण पूज्य माताजी की प्रेरणा से हो रहा है।

24 घंटे में एक बार आहार लेकर, केशलोंच एवं पदविहार जैसी कठिन साधना करते हुए ब्रह्मचर्य एवं चारित्र के तेज को सर्वत्र बिखेरने वाली पूज्य ज्ञानमती माताजी भारतीय संस्कृति की महान

धरोहर हैं, जिन्होंने 15 अप्रैल 2006 को अपनी आर्यिका दीक्षा के 50 वर्षों को पूर्ण किया है। 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य माताजी की प्रेरणा से आयोजित विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों से हुआ और सन् 2009 ''शांतिवर्ष'' के रूप में घोषित हुआ। राष्ट्रपति जी ने जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पधारकर पूज्य माताजी का आशीर्वाद प्राप्त किया।

दीर्घकालीन तपस्विनी ऐसी पूज्यनीया माताजी ने सन् 2009 में अपने जीवन के 75 वर्ष पूर्ण किए जिसे सन् 2008 से 2009 तक राष्ट्रीय स्तर पर ''हीरक जयंती महोत्सव वर्ष'' के रूप में मनाया गया।

वास्तव में आज के कलिकाल में भी आध्यात्मिक ज्ञान, चारित्र, साधना एवं मोक्षपथ को साकार करने वाले गुरुओं का जितना अभिनंदन किया जाये, उतना कम है। जो बिना कुछ कहे अपनी मुद्रा द्वारा ही शांति, संयम, सदाचार का उपदेश देते हैं ऐसे साधु इस भारत वसुन्धरा की शान हैं और हम जैसे जो भी प्राणीगण परमसौभाग्य से उनके चरणों में आश्रय प्राप्त कर लेते हैं, वे भी अपने जीवन को सही अर्थों में सार्थक कर लेते हैं।

ऐसे चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के श्रीचरणों में भावभीना कोटिशः नमन है।

गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के विविध कार्यकलाप

6 अप्रैल 2001 को भगवान महावीर स्वामी के 2600वें जन्मकल्याणक महोत्सव का उद्घाटन राजधानी दिल्ली से प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा हुआ। पुनः वर्ष भर सरकार एवं समाज द्वारा अनेकानेक प्रभावनात्मक कार्यक्रम सम्पन्न हुए हैं। इसी मध्य जैनसमाज की वरिष्ठतम साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से जो निर्माण, साहित्यसृजन आदि कार्य हुए हैं, उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

(क) स्थाई निर्माण कार्य-

आने वाले युगों-युगों तक तीर्थंकर महावीर एवं 2600वें जन्म महोत्सव वर्ष की कीर्ति को अमर बनाने वाले पूज्य माताजी द्वारा प्रेरित विभिन्न स्थायी निर्माण कार्य इस प्रकार हैं-

1. 2568 वर्ष पूर्व के इतिहास को साकार करते हुए विश्व में प्रथम बार आहार ग्रहण की मुद्रा में महामुनि महावीर की प्रतिमा एवं उनको आहार प्रदान करते हुए महासती चंदना की प्रतिकृति की स्थापना कौशाम्बी (उ.प्र.) स्थित श्री प्रभासगिरि दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र पर मई 2001 में की गई एवं 6 मई को अपार जनसमूह के मध्य पूज्य माताजी के ससंघ सानिध्य में महामुनि महावीर के आहारदान का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

साथ ही इस क्षेत्र पर छठे तीर्थंकर भगवान पद्मप्रभ की सवा सात फुट उत्तुंग लालवर्णी मनोहारी पद्मासन प्रतिमा, पहाड़ पर ढ़ाई फुट उत्तुंग लालवर्णी पद्मासन प्रतिमा तथा नवनिर्मित मानस्तंभ में चतुर्मुखी प्रतिमाएं विराजमान कर इस वर्ष में भगवान महावीर की परम्परा के समस्त पूर्व तीर्थंकरों की जन्मभूमियों एवं पंचकल्याणक भूमियों के विकास का कार्य भी किया गया।

''भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष'' का ''तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ-प्रयाग'' के निर्माण के रूप में भव्य समापन कर पूज्य माताजी के कौशाम्बी-प्रभासगिरि विहार के मध्य यह आयोजन सम्पन्न हुआ।

2. भगवान पद्मप्रभ की जन्मभूमि 'कौशाम्बी' में 'नूतन दिगम्बर जैन तीर्थ का शिलान्यास' किया गया, जिसमें पद्मप्रभ भगवान के चरणों की स्थापना की गई। कौशाम्बी के प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर में भी चतुर्मुखी चरणों की स्थापना की गई। निकटवर्ती 'चंपहा' नामक ग्राम में भगवान महावीर के विहार की पवित्र भूमि होने से वहाँ भगवान के चरण विराजमान किये गये।

3. तेरहवें तीर्थंकर भगवान विमलनाथ जी के गर्भ, जन्म, तप एवं ज्ञानकल्याणक से पवित्र भूमि श्री कंपिला जी दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र (जिला-फर्रुखाबाद) पर 8 जून 2001 को पूज्य माताजी ने इस तीर्थ का दर्शन करके इसके विकास हेतु तीर्थंकर परम्परा की प्राचीनता को दर्शाने हेतु अनेक प्रकार

की विकास योजनाओं को साकार करने की प्रेरणा दी।

4. भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर का 'नंद्यावर्त महल तीर्थ' के रूप में नवविकास जन्मकल्याणक महोत्सव की अमिट उपलब्धि के रूप में समाज को प्राप्त हुआ है।

5. भगवान महावीर की प्रथम देशनाभूमि राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर जुलाई सन् 2003 में स्थाई चित्र प्रदर्शनी, चौबीस तीर्थंकर से समन्वित 'ह्रीँ' बीजाक्षर की प्रतिमा विराजमान की गई एवं गौतम स्वामी तथा जम्बूस्वामी के चरणचिन्ह स्थापित हुए।

6. राजगृही में 12 लाख वर्ष पूर्व जन्मे बीसवें तीर्थंकर भगवान मुनिसुव्रतनाथ की सवा 12 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा विराजमान करके नूतन मंदिर का निर्माण किया गया। (फरवरी 2002 में घोषित एवं दिसम्बर 2003 में पंचकल्याणक हुआ)

7. राजगृही तीर्थ पर विपुलाचल की तलहटी में 31 फुट उत्तुंग मानस्तंभ का निर्माण एवं उसमें भगवान महावीर की पद्मासन चार प्रतिमाएँ विराजमान। (जुलाई 2003 में घोषित एवं नवंबर 2004 में स्थापित)

8. राजगृही में जवाहर नवोदय विद्यालय के प्रांगण में भगवान महावीर की सवा पाँच फुट पद्मासन प्रतिमा की स्थापना। (जुलाई 2003 में)

9. पावापुर सिद्धक्षेत्र पर सवा 11 फुट उत्तुंग भगवान महावीर की खड्गासन प्रतिमा विराजमान एवं नूतन मंदिर का निर्माण। (फरवरी 2002 में घोषित एवं दिसम्बर 2003 में पंचकल्याणक हुआ)

10. भगवान महावीर के प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी की निर्वाणभूमि गुणावां जी सिद्धक्षेत्र पर सवा पांच फुट खड्गासन गौतम गणधर की प्रतिमा स्थापित कर नूतन मंदिर का निर्माण। (जुलाई 2004 में)

11. शाश्वत तीर्थ सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र पर प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की सवा नौ फुट पद्मासन प्रतिमा विराजमान करके नूतन मंदिर निर्माण हुआ।

12. भगवान शीतलनाथ की जन्मभूमि भद्दिलपुर-इटखोरी (झारखंड) में भगवान शीतलनाथ की 10 फुट उत्तुंग प्रतिमा स्थापना की घोषणा।

13. जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में सहस्रकूट मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, बीस तीर्थंकर मंदिर, ऐतिहासिक कैलाशपर्वत भवन एवं ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ का निर्माण तथा भगवन्तों की पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न। (सन् 2002 एवं 2003 में)।

14. कनॉटप्लेस-दिल्ली के अग्रवाल दिगम्बर जैन मंदिर प्रांगण में भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ एवं पावापुर-जल मंदिर का निर्माण। (सन् 2001 में)।

15. छपरौली (जि.-मेरठ, उ.प्र.) में भगवान महावीर स्वामी कीर्तिस्तंभ का निर्माण। (सन् 2002 में)।

16. सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम तीर्थ पर भगवान ऋषभदेव की सवा सात फुट पद्मासन प्रतिमा विराजमान। (सन् 2003 में)

17. सोलापुर (महा.) में भगवान ऋषभदेव की सवा सात फुट पद्मासन प्रतिमा विराजमान । (सन् 2003 में)

18. भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर के प्राचीन मंदिर में 36 फुट उत्तुंग कीर्तिस्तंभ का निर्माण एवं उसमें महावीर स्वामी की 8 प्रतिमाएँ विराजमान। (फरवरी 2003 में)।

19. लंदन म्यूजियम में स्थापित भगवान ऋषभदेव एवं भगवान महावीर स्वामी की युगल मूर्ति की प्रतिकृति स्वरूप 6 इंच आकार वाले 500 प्रतिष्ठित जोड़े देशभर के विभिन्न मंदिरों में विराजमान किये गये हैं।

(ख) साहित्य निर्माण-

1. भगवान महावीर के 2600वें जन्मजयंती वर्ष में पूज्य माताजी ने जिस अप्रतिम भेंट को भगवान के श्रीचरणों में समर्पित किया है-वह है भगवान के 2600 गुणों को 2600 मंत्रों में आबद्ध कर रचा गया एक अनूठा पूजन विधान ''विश्वशांति महावीर विधान'' जिसकी 9 पूजाओं में सुमेरु पर्वत के आकार वाले मंडल पर 2600 रत्न भगवान के श्रीचरणों में समर्पित करने का विधान है।

2. 'भगवान महावीर देशना', 'भगवान महावीर कैसे बने?' 'तीर्थंकर महावीर और धर्मतीर्थ', 'भगवान महावीर प्रश्नोत्तरमालिका'', 'तीर्थंकर जीवन दर्शन' इत्यादि पुस्तकों के माध्यम से जन-जन में महावीर एवं उनकी वाणी को प्रतिष्ठित करने का पुरुषार्थ पूज्य माताजी ने किया है। अन्य कई पुस्तकें भी प्रकाशित होकर जन-जन के हाथों में पहुँची हैं। विविध फोल्डर (भगवान महावीर और उनकी अमूल्य शिक्षाएं इत्यादि) भी प्रकाशित किये गये हैं। ये सभी पुस्तकें एवं फोल्डर विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में भी वितरित की गईं।

3. संघस्थ शिष्या 'प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी' ने पूज्य माताजी की प्रेरणा से भगवान महावीर के जीवन के विविध पक्षों से संबंधित कई सुरुचिपूर्ण नाटक लिखे हैं, जिनका सांस्कृतिक मंचन दर्शकों पर अमिट छाप छोड़ जाता है। यथा-महासती चंदना, माता त्रिशला के अनोखे सपने, धन्य हुआ विपुलाचल पर्वत, महावीर की बाल क्रीड़ा, कुण्डलपुर के महावीर आदि।

4. पूज्य माताजी द्वारा लिखित जैनधर्म के चारों अनुयोगों

को स्वयं में समाहित किये हुए जैनधर्म की सम्पूर्ण जानकारी देने वाले एकमात्र ग्रंथ 'जैन-भारती' के अंग्रेजी एवं मराठी संस्करण प्रकाशित किये गये।

5. इनके अतिरिक्त पं. सुमेरचंद जैन दिवाकर द्वारा सन् 1968 में लिखित ''महाश्रमण महावीर'' का पुनर्प्रकाशन कर उन्हें ''जिनशासन रत्न'' उपाधि से (मरणोपरांत) सम्मानित किया गया तथा भगवान महावीर की जन्मभूमि से संबंधित कुछ पुस्तकों के प्रकाशन भी हुए हैं।

6. भगवान महावीर 2600वें जन्मकल्याणक वर्ष के अंतर्गत पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 2001 में ''भगवान महावीर हिन्दी-अंग्रेजी जैन शब्दकोश'' का निर्माण प्रारंभ हुआ जो आर्यिका श्री चंदनामती माताजी के अथक परिश्रम से सन् 2004 में पूर्ण होकर जनता के समक्ष प्रस्तुत किया गया। महोत्सव वर्ष की एक अमर उपलब्धि के रूप में यह जैन शब्दकोश वर्तमान पीढ़ी के लिए वास्तव में एक अमूल्य उपहार है।

7. कुण्डलपुर तीर्थ की पावनता, ऐतिहासिकता एवं प्राचीनता से जन-जन को परिचित कराने हेतु ''कुण्डलपुर अभिनंदन ग्रंथ'' की रूपरेखा बनी और अल्पकालिक प्रयासों के फलस्वरूप यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। यह ग्रंथ आगमदर्पण के समान सभी जिज्ञासुओं की जिज्ञासा पूर्ण करेगा, ऐसा विश्वास है।

(ग) अन्य प्रभावना कार्य-

पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं सानिध्य में नित्यप्रति कई विशेष प्रभावना कार्य सम्पन्न हुए हैं। यथा-

1. 2600वें जन्मकल्याणक उद्घाटन के अवसर पर 'विश्वशांति महावीर विधान' का प्रथम बार आयोजन 1 अप्रैल से 9 अप्रैल 2001 तक जीरोरोड, इलाहाबाद स्थित जैन धर्मशाला (महावीर जयंती भवन) में किया गया। इस अवसर पर अन्य धर्मप्रभावना के कार्यों के साथ-साथ 'भगवान महावीर प्रश्नावली प्रतियोगिता' का आयोजन भी किया गया।

2. 6 अप्रैल 2001 को 'महावीर जयंती' का पावन दिन प्रातःकाल मंगल वाद्य ध्वनि, रत्नवृष्टि एवं प्रभातफेरी से प्रारंभ किया गया। तत्पश्चात् सम्पन्न हुई विशाल रथयात्रा में भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ, भगवान महावीर के जन्माभिषेक के महोत्सव के प्रतीक सौधर्म इन्द्र के ऐरावत हाथी रथ एवं महावीर अहिंसा रैली रूप 2600 स्कूली बच्चों का ध्वजा जुलूस विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा।

3. भगवान महावीर के जन्माभिषेक से पावन सुमेरु की 101 फुट ऊँची एकमात्र प्रतिकृति (जंबूद्वीप-हस्तिनापुर) की पाण्डुकशिला पर 6 अप्रैल को महावीर स्वामी का जन्माभिषेक भी सम्पन्न किया गया।

4. 6 अप्रैल को ही लखनऊ में आयोजित धर्मसभा में पूज्य माताजी द्वारा प्रेषित प्रेरणा के अनुसार मुख्यमंत्री श्री राजनाथ सिंह ने वहाँ के 'हाथी पार्क' का नाम 'महावीर पार्क' घोषित कर दिया तथा उसमें भगवान महावीर की मूर्ति की स्थापना की स्वीकृति भी उसी समय प्राप्त हो गई। तदनुसार वहाँ मूर्ति स्थापित हो चुकी है।

5. 22 अप्रैल 2001 को इलाहाबाद के सी.एम.पी. डिग्री कालेज में ''महावीर संगोष्ठी'' आयोजित की गई, जिसमें संघस्थ ब्रह्मचारिणी बहन द्वारा पूज्य माताजी का मंगल संदेश एवं दिशा-निर्देश प्रदान किया गया। 22 अप्रैल को ही ''तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ '' पर महावीर जयंती का विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसमें कर्मठ कार्यकर्ताओं का सम्मान, त्रिशला एवं महावीर के संवाद रूप सांस्कृतिक मंचन इत्यादि कार्यक्रम विशेष उल्लेखनीय रहे।

6. पूज्य माताजी की प्रेरणा पर आई.आई.टी. कानपुर के युवा अध्यापकों एवं छात्रों के संगठन 'जैन-मंच' ने ''भगवान महावीर का 2600वाँ जन्मजयंती वर्ष आप सबके लिए मंगलकारी हो''के 26 बोर्ड पूरे कानपुर शहर में स्थान-स्थान पर लगवाये।

7. 2 मई (वैशाख शुक्ला दशमी) को भगवान महावीर का 'केवलज्ञानकल्याणक दिवस', 27 मई (ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी) को 'श्रुतपंचमी पर्व' (प्रथम जैन सूत्र ग्रंथ ''षट्खण्डागम'' का अवतार दिवस), 26 जून (आषाढ़शुक्ला षष्ठी) को भगवान महावीर का 'गर्भकल्याणक दिवस' विशेष आयोजनों एवं धर्मप्रभावना सहित मनाये गये। 6 से 8 जुलाई तक 'वीरशासन जयंती पर्व' (श्रावण कृष्णा एकम) के त्रिदिवसीय आयोजन के अंतिम दिन विपुलाचल पर्वत की भव्य झांकी एवं 2600 ग्रंथों का जुलूस निकाला गया।

9 से 13 जुलाई तक गौतम गणधर के मुख से उद्भूत 'चैत्यभक्ति' से समन्वित ''सामायिक पाठ'' का पूज्य गणिनी माताजी द्वारा एवं पदस्थ ध्यान (ॐ एवं ह्रीं) का प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती माताजी द्वारा ''तीर्थंकर महावीर देशना शिविर'' में अभ्यास कराया गया। इस सम्पूर्ण कार्यक्रम का प्रसारण 'आस्था-चैनल' पर किया गया।

23 अगस्त से 1 सितम्बर 2001 तक मनाये गये ''दशलक्षण महापर्व'' में पूज्य माताजी ने प्रतिदिन भगवान महावीर के पूर्व भवों का एक-एक दिन क्रम से वाचन करके जनसाधारण को उनके जीवनवृत्त से परिचित कराते हुए संयम, त्याग, सम्यक्त्व, दशधर्मों, सोलहकारण भावनाओं इत्यादि रूप धर्मामृत का पान कराया। आर्यिका श्री चंदनामती माताजी द्वारा लिखित भगवान महावीर संबंधी नाटकों का सुन्दर सांस्कृतिक मंचन

दिल्ली की विविध महिला संगठन इकाइयों द्वारा रात्रि में करके विशेष धर्मप्रभावना की गई।

8. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सम्यग्ज्ञान' द्वारा भी प्रत्येक अंक में भगवान महावीर संबंधी विशेष सामग्री प्रकाशित कर जनचेतना का सार्थक प्रयास किया गया।

संस्थान के द्वारा ही 6 अप्रैल को राजधानी दिल्ली में महावीर जयंती के अवसर पर प्रधानमंत्री जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुए महावीर जयंती के विराट कार्यक्रम में सम्मिलित होने हेतु पूज्य माताजी की प्रेरणा से युक्त पोस्टर सम्पूर्ण देश में भेजे गये। इसके अतिरिक्त भगवान महावीर के गर्भकल्याणक दिवस एवं वीरशासन जयंती पर्व को अखिल भारतीय स्तर पर मनाने हेतु पोस्टर तथा हैण्डबिल भी पूरे देश में पहुँचाये गये।

9. पूज्य माताजी की प्रेरणा से अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन द्वारा विशेष कार्यकर्ता महिलाओं को 'माता त्रिशला पुरस्कार' देकर प्रोत्साहित किया गया।

10. धर्मप्रभावना के प्रभावपूर्ण साधन टी.वी. के 'आस्था चैनल' के माध्यम से जहाँ 'दशलक्षण पर्व' में प्रतिदिन दशधर्मों एवं भगवान महावीर के पूर्वभवों पर पूज्य माताजी के मंगल प्रवचनों तथा सामायिक एवं ध्यान के अभ्यास का प्रसारण कर धर्मप्रभावना की गई, वहीं इसी चैनल पर 17 सितम्बर 2001 से लेकर लगभग 1 वर्ष तक प्रतिदिन मध्यान्ह 3.30 बजे से तीर्थंकर परम्परा का सचित्र ज्ञान जनसाधारण को घर बैठे सुलभ कराने का अत्युत्तम प्रयास पूज्य माताजी के मंगल प्रवचनों के माध्यम से किया गया।

11. ''विश्वशांति महावीर विधान' का विराट राष्ट्रीय आयोजन (एक ही पाण्डाल में 26 मंडल बनाकर अलग-अलग विधान हुए) 21 से 28 अक्टूबर 2001 तक भगवान महावीर मण्डप, निकट दिल्ली गेट (फिरोजशाह कोटला मैदान), दिल्ली में सम्पन्न हुआ, जिसमें राजधानी दिल्ली सहित विविध प्रांतों के हजारों भक्तों ने भाग लिया।

12. राजधानी दिल्ली-कनॉट प्लेस में ही प्रथम बार 'दीपावली' (15 नवम्बर 2001) के शुभ दिन भगवान महावीर की निर्वाणस्थली 'पावापुरी' की प्रतिकृति बनाकर सामूहिक रूप से 2600 निर्वाणलाडू चढ़ाने का भव्य कार्यक्रम आयोजित किया गया।

13. भगवान के जन्मकल्याणक से पवित्र सुमेरु पर्वत की 101 फुट ऊँची एकमात्र प्रतिकृति (जंबूद्वीप-हस्तिनापुर) पर भगवान महावीर का 2600 कलशों से महामस्तकाभिषेक कार्यक्रम आयोजित किया गया।

14. 10 दिसम्बर 2001 को तालकटोरा इन्डोर स्टेडियम, दिल्ली में जैनधर्म के चारों सम्प्रदायों द्वारा सामूहिक रूप से भगवान महावीर दीक्षाकल्याणक समारोह के आयोजन (मगशिर कृ. 10) में संघ सानिध्य प्रदान कर सामाजिक संगठन को मजबूत किया।

15. 6 जनवरी 2002 को फिक्की ऑडिटोरियम-दिल्ली में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन युवा परिषद के स्थापना रजत जयंती समारोह में भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर के विकास हेतु युवाओं का आह्वान किया।

16. 20 फरवरी 2002 को संघ सहित दिल्ली से कुण्डलपुर (नालंदा) के लिए मंगल विहार कर दिया। इस यात्रा के मध्य मथुरा, आगरा, फिरोजाबाद, इटावा आदि स्थानों पर भारी धर्मप्रभावना के कार्यक्रम सम्पन्न हुए तथा सन् 2002 का चातुर्मास तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली-प्रयाग इलाहाबाद (उ.प्र.) में हुआ। पुनः 29 दिसम्बर 2002 को संघ का पदार्पण कुण्डलपुर की धरती पर हुआ तबसे कुण्डलपुर के विकासचरण प्रारंभ हो गये और 22 महीनों के अन्तराल में ''नंद्यावर्त महल'' के नाम से तीर्थ का जो अप्रतिम रूप निखर कर आया है वह इतिहास निर्माण के साथ-साथ संस्कृति संरक्षण का अभूतपूर्व कार्य है जो युगों-युगों तक महावीर जन्मभूमि को जीवन्त रखेगा।

17. कुण्डलपुर एवं आसपास के तीर्थक्षेत्रों में दी गई निर्माण प्रेरणा के अतिरिक्त पूज्य माताजी एवं संघ ने वहाँ की हजारों ग्रामीण जनता को मांसाहार का त्याग करवाकर उनसे शाकाहार संकल्प पत्र भरवाए तथा उन्हें सम्मानित किया गया।

18. जन्मभूमि में भगवान महावीर की जन्मजयंती मनाने की जो परम्परा लगभग 30 वर्ष से समाप्त हो गई थी उसे पुनः सन् 2003-2004 में व्यापक स्तर पर महावीर जयंती महोत्सव के रूप में प्रारंभ करवाई तथा जन्मभूमि समिति को आगे भी सदैव चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को महावीर जयंती मनाने की प्रेरणा दी है।

19. इसी प्रकार जन्मभूमि समिति एवं बिहार सरकार के संयुक्त तत्त्वावधान में सन् 2003-2004 के अक्टूबर मास में शरदपूर्णिमा के शुभ अवसर पर ''कुण्डलपुर महोत्सव'' मनाया गया। वर्तमान में सन् 2010 से प्रतिवर्ष नंद्यावर्त महल तीर्थ के समक्ष बिहार सरकार द्वारा पर्यटन विभाग, कला एवं संस्कृति विभाग तथा जिला प्रशासन नालंदा के सहयोग से ''कुण्डलपुर महोत्सव'' का आयोजन किया जा रहा है।

पूज्य माताजी के पर्वत समान ऊँचाई एवं सागर के समान अथाह विस्तृत व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व में से मैंने मात्र सरसों सदृश कतिपय बिन्दुओं को यहाँ प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार से उनके द्वारा चिरकाल तक धर्मप्रभावना के कार्य होते रहें, यही मंगलभावना है।

दीपावली पर्व एवं वीर निर्वाण संवत् का नूतन वर्षाभिनन्दन

लेखिका–गणिनी ज्ञानमती

जैन इतिहास के अनुसार आज से (सन् 2015 से) 2541 वर्ष पूर्व तीर्थंकर भगवान महावीर ने बिहार प्रान्त के पावापुरी नगर में जलमंदिर से समस्त कर्मों का नाश कर मोक्षधाम को प्राप्त किया था। जैसा कि आचार्यश्री पूज्यपाद स्वामी ने निर्वाणभक्ति में कहा है–

पावापुरस्य बहिरुन्नतभूमिदेशे,
पद्मोत्पलाकुलवतां सरसां हि मध्ये।
श्रीवर्धमानजिनदेव इति प्रतीतो,
निर्वाणमाप भगवान् प्रविधूतपाप्मा।।24।।

पावापुर के बाह्य सरोवर, पद्म कुमुदनी से शोभित।
मध्यभाग में उसके उन्नत, भूमि देश में प्रभु राजित।।
श्रीमन् वर्धमान जिनदेवा, त्रिभुवन विश्रुत पाप रहित।
कर्म अघाती धो करके, निर्वाण गये भगवन् सन्मति।।

इसी स्मृति में प्रतिवर्ष भक्तगण दीपावली के दिन कार्तिक कृष्णा अमावस्या की प्रभात बेला में पावापुरी के जलमंदिर में भक्तिपूर्वक निर्वाणलाडू चढ़ाते हैं। वर्तमान में श्वेताम्बर समुदाय की कमेटी ने पावापुरी जलमंदिर के पास बोर्ड लगा दिया है कि–

''आज से लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व जैनधर्म के चौबीसवें अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का निर्वाण होने पर देवताओं द्वारा यहाँ पर अंतिम संस्कार किया गया। इस पवित्र स्थान की भस्म व मिट्टी को उठाते-उठाते ही एक बड़ा सा गड्ढा बन गया, जिसने एक विशाल सरोवर का स्थान ले लिया। इस सरोवर में कमल रहने से इसे कमल सरोवर भी कहते हैं। वर्तमान में इस सरोवर की लम्बाई 1451 फुट एवं चौड़ाई 1223 फुट है।''

दिगम्बर जैन परम्परानुसार उपर्युक्त वर्णन पूर्णतया निराधार है, तदनुसार महावीर स्वामी ने इसी जल मंदिर में ही दो दिन का योग निरोध करके कार्तिक कृष्णा अमावस की प्रत्यूष बेला में मोक्ष प्राप्त किया उसके पश्चात् सौधर्म इन्द्र आदि सभी देवताओं ने मिलकर उनका निर्वाणकल्याणक महोत्सव मनाया पुनः अग्निकुमार देवों ने अपने मुकुट से अग्नि निकालकर भगवान् के शरीर का अंतिम संस्कार किया था। वहाँ पर इन्द्र ने वज्र से भगवान् के चरण उत्कीर्ण किये थे, उस विषय में भी पूज्य आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी ने स्वयंभूस्तोत्र में लिखा है–

ककुदं भुवः खचरयोषिदुपितशिखरैरलंकृतः।
मेघपटलपरिवीत तटस्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा।।127।।
वहतीति तीर्थमृषिभिश्च, सततमभिगम्यतेऽद्य च।
प्रीतिविततहृदयैः परितो, भृशमूर्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः।।128।।

अर्थात् गिरनार पर्वत से भगवान नेमिनाथ के मोक्षगमन के पश्चात् इन्द्रों ने भगवान की निर्वाण कल्याणक पूजा के बाद गिरनार पर्वत पर वज्र से चरण उत्कीर्ण किया था। इसी प्रमाण को उद्धृत करते हुए मेरे दीक्षा गुरुवर परमपूज्य आचार्य श्री वीरसागर महाराज कहते हैं कि–इसी प्रकार से पावापुरी सरोवर के मध्य मणिमयी शिला से भगवान के मोक्ष जाने के बाद इन्द्रों ने वज्र से यहाँ पर भी चरणचिन्ह उत्कीर्ण करके इस शिला को सिद्धशिला के समान पूज्य पवित्र बनाया था।

इस दीपावली पर्व के महत्त्व एवं वीर निर्वाण संवत् के बारे में मैंने ''मेरी स्मृतियाँ'' ग्रंथ में भी विस्तार से दिया है ताकि पढ़ने वालों को जैनधर्म से संबंधित इतिहास की जानकारी मिल सके।

नूतन-वर्ष अभिनंदन–

आज भारत देश में वीरनिर्वाण संवत्, विक्रम संवत्, शालिवाहन शक और ईसवी सन् प्रचलित हैं। इनके प्रथम दिवस को वर्ष का प्रथम दिन मानकर नववर्ष की मंगल कामनाएँ की जाती हैं। जैन धर्मानुयायी महानुभावों को किस संवत् का कौन सा दिवस नववर्ष का मंगल दिवस मानना चाहिए? इस विषय पर विचार करना चाहिए।

आज ईसवी सन् अत्यधिक प्रचलित है। प्रायः केलेंडर, तिथि-दर्पण और डायरियां भी इसी सन् से छपने लगी हैं। वास्तव में अंग्रेजों ने अपने भारत पर शासन करके अपना ऐसा प्रभाव छोड़ा है कि उसे मिटाना असंभव है। खैर! कोई बात नहीं, 1 जनवरी से प्रति वर्ष ईसवी सन् प्रारंभ होता है।

कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा गुजरात में विक्रम संवत् को अधिक महत्व दिया जाता है। मैंने श्रवणबेलगोल में देखा, जो लोग वहीं रहकर भी ऊपर जाकर भगवान का दर्शन नहीं करते थे, वे भी जैन बंधु चैत्रवदी अमावस्या (दक्षिण व गुजरात के अनुसार फाल्गुन कृ. अमावस्या) की रात्रि में ऊपर पहाड़ पर जाकर सोते हैं और प्रातः उठते ही भगवान बाहुबली का दर्शन कर नूतन-वर्ष की मंगल-कामना करते हुए नीचे उतरते हैं। चैत्र शुक्ला एकम् से विक्रम संवत् का नया वर्ष शुरू होता है। आज पंचांग इसी संवत् से चल रहे हैं।

वर्तमान में तो वीरनिर्वाण महोत्सव की चर्चा जैन क्या

जैनेतरों में भी सारे देश में फैल चुकी है। सन् 1974 में भगवान महावीर का पच्चिससौवां निर्वाण महोत्सव भी एक वर्ष तक जैनों के चारों सम्प्रदायों के महारथियों ने आगे होकर मनाया, जिससे जैन के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के साथ अहिंसा धर्म का प्रचार-प्रसार खूब ही हुआ है। अब तिथि-दर्पण भी ''वीरनिर्वाणसंवत्'' से निकाले जाने लगे हैं।

आज जैन समाज में ही नहीं, जैनेतर समाज में भी वीरनिर्वाण दिवस की (दीपावली के दिन) रात्रि में गणेश पूजा और लक्ष्मी पूजा करके दुकान पर नूतन वसना और नूतन बही आदि बदलने की प्रथा है। इस दिन अनेक प्रबुद्ध जैन अपनी-अपनी दुकान पर यंत्र अथवा जिनवाणी रखकर भगवान महावीर की पूजा, सरस्वती की पूजा आदि करके मंगलाष्टक पढ़कर, नूतन बहियों और वसनों पर स्वस्तिक, श्री आदि बनाकर ''श्री महावीराय नमः'' आदि मंत्र लिखकर, बही बदलने का मुहूर्त करके संवत् लिख देते हैं।

इस दिन लक्ष्मी-गणेश की पूजा के बारे में सही स्थिति का बोध कराने के लिए मैंने श्री गौतम गणधर की पूजा और केवलज्ञान महालक्ष्मी की पूजा, ऐसी दो पूजाएँ बनाई हैं जो ''जम्बूद्वीप पूजांजलि'' पुस्तक एवं इस ''दीपावली पूजन'' नामक पुस्तक में प्रकाशित हैं क्योंकि कार्तिक कृ. अमावस्या को प्रातः प्रत्यूष बेला में भगवान महावीर स्वामी ने पावापुरी से निर्वाण प्राप्त किया था, उसी के उपलक्ष्य में स्वर्ग से इन्द्रों ने, असंख्य देव-देवियों ने आकर यहाँ पावापुरी में भगवान का निर्वाणोत्सव मनाया था और पावापुरी में दीपों को जलाकर उत्सव किया था। उसी समय से आज तक प्रतिवर्ष अपने भारत देश में सायंकाल में सर्वत्र दीपक जलाकर ''दीपमालिका'' या दीपावली दिवस मनाया जाता है। जैसा कि हरिवंशपुराण में कहा भी है–

ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात्प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं जिनेन्द्रनिर्वाणविभूतिभक्तिभाक्।।21।।

भगवान के निर्वाण कल्याणक की भक्ति से युक्त संसार के प्राणी इस भरतक्षेत्र में प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिका के द्वारा भगवान महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे अर्थात् उन्हीं की स्मृति में दीपावली का उत्सव मनाने लगे।।21।।

यह हुई दीपावली की बात, पुनः जो उसी दिन रात्रि में नूतन बही पूजन के समय लक्ष्मी और गणेश की पूजा की प्रथा है, उसमें भी रहस्य है। उसी दिन पावापुर में भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष जाने के बाद सायंकाल में श्री गौतम गणधर को केवलज्ञान प्रगट हुआ था, तत्क्षण ही इन्द्रों ने आकर उनकी गंधकुटी की रचना करके उनके केवलज्ञान की पूजा की थी। **'गणानां ईशः गणेशः, गणधरः'** ये पर्यायवाची नाम श्री गौतमस्वामी के ही हैं। सब लोग इस बात को न समझकर गणेश और लक्ष्मी की पूजा करने लगे। वास्तव में गणधर देव की, केवलज्ञान महालक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए। खास कर जैनों को तो यही कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा का नूतन वर्ष मानना चाहिए। इसी दिन से तिथि दर्पण व केलेंडर छपाना चाहिए।

युगादि–वैसे मेरी दृष्टि में ''युगादि दिवस'' भी बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसकी तरफ प्रायः जैन धर्मानुयायियों का लक्ष्य नहीं है। यह मंगलमय दिवस है ''श्रावण कृष्णा प्रतिपदा''। यह प्रत्येक युग का आदि दिवस है इसलिए इसे ''युगादि'' कहा है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छह-छह काल माने हैं। अवसर्पिणी के सुषमा सुषमा, सुषमा, सुषमादुःषमा, दुःषमासुषमा, दुःषमा और अतिदुःषमा। ये ही उत्सर्पिणी में उल्टे क्रम से चलते हैं। जैसे–अतिदुःषमा आदि। इन सब कालों की समाप्ति आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को होती है और प्रारंभ श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से होता है।

इस मंगल दिवस को ही भगवान महावीर की दिव्यध्वनि खिरी थी अतः आज इसे **''वीरशासन जयंती''** दिवस के नाम से मनाने की प्रथा है। इस विषय में आप प्रमाण देखिये (तिलोयपण्णत्ति अध्याय 1, पृ. 9 से उद्धृत)–

एत्थावसप्पिणीए चउत्थकालस्स चरिमभागम्मि।
तेत्तीसवासअडमासपण्णरसदिवससेसम्मि।।68।।
वासस्स पढममासे सावणणाममि बहुलपडिवाए।
अभिजीणक्खत्तम्मिं य उप्पत्ती धम्मतित्थस्स।।69।।
सावणबहुले पाडिवरुद्दमुहुत्ते सुहोदये रविणो।
अभिजस्स पढमजोए जुगस्स आदी इमस्स पुढं।।70।।

यहाँ अवसर्पिणी के चतुर्थ काल के अंतिम भाग में तेतीस वर्ष, आठ माह और पन्द्रह दिन शेष रहने पर वर्ष के श्रावण नामक प्रथम महीने में, कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन अभिजित् नक्षत्र के उदित रहने पर धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई।।68-69।।

श्रावण कृष्णा एकम् के दिन रुद्र मुहूर्त के रहते हुए सूर्य का शुभ उदय होने पर अभिजित् नक्षत्र के प्रथम योग में इस युग का प्रारंभ हुआ, यह स्पष्ट है।।70।।

धवला में भी लिखा है–

सावण-बहुण-पडिवदे, रुद्द-मुहुत्ते सुहोदए रविणो।
अभिजिस्स पढम-जोए, एत्थ जुगाई मुणेयव्वो।।57।।

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन, रुद्र मुहूर्त में, सूर्य का शुभ उदय होने पर और अभिजित् नक्षत्र के प्रथम योग में जब युग की आदि हुई, तभी तीर्थ की उत्पत्ति समझना चाहिए।।57।।

राजगृही नगर का जो स्थान भगवान महावीर की दिव्यध्वनि

से पवित्र हुआ था, उसके बारे में भी तिलोयपण्णत्ति (अध्याय 1, पृ. 8) में वर्णन आया है–

सुरखेयरमणहरणे, गुणणामे पंचसेलणयरम्मि।
विउलम्मि पव्वदवरे, वीरजिणो अट्ठकत्तारो।।65।।
चउरस्सो पुव्वाए, रिसिसेलो दाहिणाए वेभारो।
णइरिदिसाए विउलो, दोण्णि तिकोणट्ठिदायारा।।66।।
चावसरिच्छोछिण्णो, वरुणाणिलसोमदिसविभागेसु।
ईसाणाए पंडू वण्णा सव्वे कुसग्गपरियरणा।।67।।

अर्थ–देव और विद्याधरों के मन को मोहित करने वाले और सार्थक नाम से प्रसिद्ध पंचशैल (पांच पहाड़ों से सुशोभित) नगर अर्थात् राजगृही नगरी में, पर्वतों में श्रेष्ठ विपुलाचल पर्वत पर श्रीवीरजिनेन्द्र अर्थशास्त्र के कर्ता हुए।।65।।

राजगृह नगर के पूर्व में चतुष्कोण ऋषिशैल, दक्षिण में वैभार और नैऋत्य दिशा में विपुलाचल पर्वत है। ये दोनों वैभार और विपुलाचल पर्वत त्रिकोण आकृति से युक्त हैं।।66।।

पश्चिम, वायव्य और सोम (उत्तर) दिशा में फैला हुआ धनुष के आकार वाला छिन्न नाम का पर्वत है और ईशान दिशा में पाण्डु नाम का पर्वत है। उपर्युक्त पाँचों ही पर्वत कुशाग्रों से वेष्टित हैं।।67।।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि ''श्रावण कृष्णा प्रतिपदा'' युग की आदि है। भगवान महावीर के मोक्ष जाने के बाद पाँचवां काल प्रवेश होने में तीन वर्ष, आठ माह, पन्द्रह दिन बाकी रहे थे। तीन वर्ष, कार्तिक शुक्ला के पन्द्रह दिन और मगसिर से आषाढ़ तक आठ माह गिनने चाहिए।

कर्नाटक में लोग चैत्र शु. 1 को ही ''युगादि अब्बा'' कहते हैं किन्तु वह तो विक्रमादित्य राजा से चला है अतः वह ''युगादि अब्बा'' न होकर श्रावण कृष्णा एकम् ही युगादि पर्व है। दक्षिण में पर्व को ''अब्बा'' कहते हैं।

इसे यहाँ बताने का मेरा अभिप्राय यही है कि आप जैन लोग वीरनिर्वाण संवत् से ही ''नूतन वर्ष'' मनावें तथा श्रावण कृष्णा एकम् को ''वीरशासन जयन्ती'' और युगादि दिवस-पर्व अवश्य मनावें। यदि जैन ही अपनी संस्कृति का प्रचार-प्रसार नहीं करेंगे, तो भला और कौन करेंगे? इसलिए वीर निर्वाण के दिन रात्रि में जैन विधि से बही और वसना आदि बदलकर कार्तिक शुक्ला एकम् से ''नूतन वर्ष'' मानना चाहिए तथा नव संवत्सर की पूजा आदि करके अपने वर्ष को मंगलमय बनाना चाहिए।

भजन

रचयित्री-आर्यिका चंदनामती

आए हैं आए हैं आए हैं, प्रभु ऋषभदेव आज आए हैं।
लाए हैं लाए हैं लाए हैं, विश्वशांति का संदेश लाए हैं।।
मांगीतुंगी पर्वत पर इक सौ अठ फुट के प्रभु खड्गासन।
प्रेरणा मिली माँ ज्ञानमती की, अमर हो गया जिनशासन।।
छाए हैं छाए हैं छाए हैं, प्रभु जनमानस में छाए हैं।।1।।

विश्वशांति कलश यात्रा रथ का, वंदन अभिनंदन स्वागत है।
मांगीतुंगी के प्रथम महोत्सव में, आने का आमंत्रण है।।
छाए हैं छाए हैं छाए हैं, प्रभु जनमानस में छाए हैं।।2।।

इतिहास बना है यह युग का, जिनमुद्रा का दर्शन कर लो।
''चन्दनामती'' जिनशासन की, इस कीर्ति को वन्दन कर लो।।
छाए हैं छाए हैं छाए हैं, प्रभु जनमानस में छाए हैं।।3।।

भजन

रचयित्री-आर्यिका चंदनामती

तर्ज-हम जैन कुल में जन्मे.....

गणिनी ज्ञानमती माता पर, अभिमान करो रे।
ये तो जैन कुल की शान हैं, गुणगान करो रे।।टेक.।।

इनने भारतीय संस्कृति की शान बढ़ाई,
ऋषभदेव प्रभु की सबसे बड़ी मूर्ति बनाई।।

मूर्ति प्रेरिका इस माता पर, अभिमान करो रे।
ये तो जैन कुल की शान हैं, गुणगान करो रे।।1।।

भाग्यशाली आप और हम, जो जन्मे आज हैं,
मूर्ति बनते हुए देखने का, जगा भाग्य है।

अपने पुण्य व सौभाग्य पर, अभिमान करो रे।
गणिनी ज्ञानमती माता पर, अभिमान करो रे।।2।।

जरा कल्पना करो, कि चौथा काल कैसा था,
ऋषभदेव पुत्री ब्राह्मी माँ का, त्याग कैसा था।

चलो 'चन्दना' गुरुमात का, गुणगान करो रे।
गणिनी ज्ञानमती माता पर, अभिमान करो रे।।3।।

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज का जीवन परिचय

(आश्विन शु. ग्यारस-23 अक्टूबर 2015 को आचार्यश्री के 91वें आचार्य पदारोहण दिवस के अवसर पर प्रस्तुत)

प्रस्तुति—गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

जन्मकाल और बाल्यावस्था –

गौरवशाली प्रकाशपुंज आचार्य कुंदकुंद,स्वामी समंतभद्र, विद्यानंदी, जिनसेन इत्यादि आचार्यों की जन्मभूमि तथा उपदेश से पवित्र कर्नाटक प्रदेश में आचार्यश्री 108 शांतिसागर महाराज का जन्म हुआ।

बेलगाँव जिले में भोज ग्राम के भीमगौंडा पाटील की धर्मपत्नी सत्यवती थीं। सन् 1872 में आषाढ़ कृष्णा षष्ठी के दिन माता सत्यवती ने अपने पीहर येळगुळ में पुत्र को जन्म दिया। इस पुत्र का नाम 'सातगौंडा' रखा गया। ये ही आगे प्रथमाचार्य शांतिसागर जी हुए हैं।

'आचार्य शांतिसागर जी के माता-पिता भोजग्राम निवासी थे, लेकिन आचार्य शांतिसागर जी का जन्म येळगुळ ग्राम में नाना के घर हुआ। इसलिए दक्षिण में कुछ लोग येळगुळ को जन्मस्थान मान लेते हैं तथा कुछ लोग भोजग्राम को जन्मस्थान मान लेते हैं। किन्तु आज भी देखा जाता है कि यदि किसी बालक का जन्म ननिहाल, अन्य शहर या हास्पीटल में हुआ होवे, तो भी जन्मभूमि पैतृक स्थान को ही माना जाता है। इस दृष्टि से भोजग्राम को ही आचार्य श्री का जन्मस्थान मानना ठीक है।'

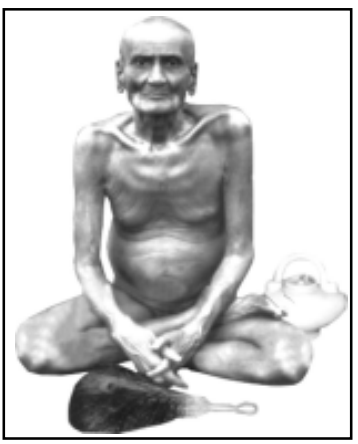

बाल्यावस्था में भगवान की भक्तिपूजा करना, त्यागीगणों को आहारदान देना, उनकी वैयावृत्य करना, दीन-दुखियों को सहायता पहुँचाना आदि कार्यों में उनकी विशेष रुचि थी। छोटे-बड़े व्यसनों से दूर पिताजी ने सोलह वर्ष तक दिन में एक ही बार भोजन करने का व्रत लिया था। आचार्यश्री का बाल-जीवन इस प्रकार से सदाचार सम्पन्न माता-पिता की छत्र-छाया में व्यतीत हुआ। एक प्रकार से निसर्ग योजना में यह मणिकांचन संयोग ही था।

सातगौंडा की लौकिक शिक्षा बहुत कम हुई। वे पाठशाला में तीसरी कक्षा तक पढ़ पाये। शिक्षा के आदान-प्रदान की व्यवस्था भी आज की अपेक्षा देहातों में अपेक्षाकृत कम थी। संस्कारशील माता-पिता के द्वारा घर में जो कुछ धार्मिक संस्कार हुए, केवल वे ही जीवनाधार बन गये। पाठशाला में भी सातगौंडा ने एक बुद्धिमान विद्यार्थी के रूप में ही प्रसिद्धि पाई थी।

जब सातगौंडा जी 9 साल के हुए, ज्येष्ठ भाई देवगौंडा और आदगौंडा का विवाह सम्पन्न हो रहा था। सातगौंडा का भी विवाह जबरदस्ती कर दिया गया। ''संसार विषये सद्यः स्वतो हि मनसो गतिः''। संसार के विषयों में संसारी जीवों की निसर्ग से प्रवृत्ति होती ही है। बच्चों के खेल जैसी प्रक्रिया हो गई। दैव को वह भी स्वीकार नहीं था। विवाह के पश्चात् छः माह के भीतर ही विवाहिता की इहलोक यात्रा समाप्त हो गई। सातगौंडा बाल्यावस्था में विवाहबद्ध होकर भी निसर्ग से बालब्रह्मचारी रहे। ''लाभात् अलाभं बहुमन्यमानः।'' लाभ से अलाभ को लाभप्रद मानने की बालक सातगौंडा की निसर्ग प्रवृत्ति रही है। अनंतर किये गये आग्रह को उन्होंने स्वीकार नहीं किया अर्थात् पुनः विवाह नहीं किया।

अध्यात्म जीवन का नैसर्गिक आकर्षण –

आत्मानुशासन, समयसार इन दो ग्रंथों का वाचन सातगौंडा प्रारंभ से ही करते थे। विशेष रूप से तत्त्वचिंतन मनन में काल व्यतीत होता था। आयु के 17वें, 18वें वर्ष में भरी युवावस्था में ही मन में दिगम्बरी दीक्षा लेने के सहज भाव होने लगे परन्तु माता-पिता के दबाववश उस समय वे अपने विचारों को अमल में न ला सके, व्यक्त भी न कर सके। कुछ काल तक उन्हें घर में ही रहना पड़ा परन्तु प्रवृत्ति जल से भिन्न कमल की तरह बनी रही।

शास्त्र-स्वाध्याय की तरह तीर्थक्षेत्रों की भक्ति का भी आचार्यश्री के जीवन में विशेष स्थान रहा। मोक्षमार्ग के पथिक साधक के जीवन में तीर्थयात्रा-दर्शन का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान

होता ही है। असंगभाव या वीतराग भावों की धारा प्रवाहित करने के लिए दृष्टिसम्पन्न साधु यात्रा को अच्छा निमित्त बना सकता है। सातगौंडा यह कर पाये इसी में परिमार्जित तत्त्वदृष्टि स्पष्ट होती है। विहार का उनका प्रत्येक कदम वीतरागता के लिए था अर्थात् वीतरागता की ओर था।

सहज संवेगभाव और वैराग्य –

इसी अवस्था में पाँच-छः साल और बीत गये। सातगौंडा के मन में निर्ग्रंथ दीक्षा लेने के विचार तीव्रता से आने लगे। इस बार साहस के साथ माता-पिता के समक्ष उन्होंने अपनी भावना व्यक्त भी की परन्तु पिता जी ने कहा, ''हमारे ये अंतिम दिन हैं, दीक्षा लेकर हमारी मानसिक यातनाएँ बढ़ेंगी सो ठीक नहीं होगा, अच्छा नहीं होगा।'' पिता की आज्ञा तथा पुत्र-कर्तव्य का विकल्प होने से सातगौंडा का दीक्षा लेने का विचार कुछ समय के लिए स्थगित हुआ।

ईसवी सन् 1912 में सातगौंडा की माताजी की इहलोक यात्रा समाप्त हुई। उसके कुछ साल पहले ही पिताजी का भी स्वर्गवास हुआ था। अब प्रकृतिसिद्ध त्यागमय जीवन और संयमशील बन गया। कोई लगाव भी न रहा। इसी काल में श्रवणबेलगोला-गोमटेश्वर इत्यादि पुण्यक्षेत्रों की दक्षिण यात्रा भी समाप्त कर सातगौंडा भोजग्राम में आये।

क्षुल्लक दीक्षा –

सातगौंडा ने जीवन के इकतालीस साल पूर्ण होने के उपरांत दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय किया। उस समय कर्नाटक में दिगम्बर स्वामी श्री देवेंद्रकीर्ति विहार कर रहे थे। ''कापशी'' ग्राम के निकट ''उत्तूर'' नामक देहात है। वहाँ उनका आगमन होने पर सातगौंडा मुनिश्री के समीप पहुँचे और दिगम्बर दीक्षा देने की प्रार्थना की परन्तु श्री देवेन्द्रकीर्ति स्वामी ने प्रारंभ में क्षुल्लक पद की ही दीक्षा लेने को कहा। ठीक ही है ''क्रमारम्भो हि सिद्धिकृत्'' गुरु आज्ञा को प्रमाण माना। ई. सन् 1914 में ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी तिथि को ''सातगौंडा'' ने क्षुल्लक दीक्षा धारण की। इस प्रकार स्वतंत्र संयमी जीवन का शुभारंभ हो गया।

ऐलक पद-दीक्षा और पद-विहार करने की प्रतिज्ञा –

श्री गिरनार क्षेत्र का दर्शन करते समय महाराजजी का हृदय उठी हुई वैराग्य भावनाओं से गद्‌गद हो उठा। भगवान नेमिनाथ के चरणों के पुनः-पुनः दर्शन कर क्षुल्लकजी के वीतराग भावों में सहज वृद्धि हुई। सावधानी तो पूरी थी ही। उसी समय श्री नेमिनाथ भगवान के चरण साक्षी में स्वयं ऐलक पद को स्वीकार किया। एक कौपीन मात्र परिग्रह के बिना सब वस्त्रादि परिग्रहों को त्याग दिया। नूतन प्रतिमा की प्रतिष्ठा पूर्वप्रतिष्ठित प्रतिमा की साक्षी में होती है और नया व्रत विधान पूर्व में व्रती के साक्षी से ही होना चाहिए, ऐसी एक अच्छी प्राचीन परम्परा है। महाराजजी इस परम्परा को तोड़ना नहीं चाहते थे जैसा कि निर्ग्रन्थ दीक्षा के समय देखा गया। इस समय उनसे रहा नहीं गया। वैराग्य भावों की वेगवान गति को वे रोक नहीं सके। पूज्य स्वर्गीय अनुभवसमृद्ध वीरसागर जी महाराज ठीक कहते थे। ''गुरु कहे सो करना गुरु करे सो नहीं करना।'' अस्तु! इस समय वीतरागता का वैराग्यभाव से अपूर्व मिलन होना था, हो गया। श्री गिरनारजी से लौटते समय ऐलकजी ने श्री दक्षिण कुंडलक्षेत्र की वंदना की। श्री पार्श्वप्रभु भगवान की मूर्ति की साक्षी में ऐलकजी महाराज ने सब वाहनों का आजीवन के लिए परित्याग कर दिया। आगे के लिए विहार का रूप ''पद-विहार'' ही निश्चित हुआ। ''याजं याजमटन्नवे तीर्थ-स्थानान्यपूजयत्।'' शुद्ध निर्जंतुक रास्ते से चार हाथ आगे की जमीन को देखकर विहार करते हुए सूर्यप्रकाश में चलने की मुनि की प्रवृत्ति को ईर्यासमिति कहते हैं। गाड़ी, मोटर या रेल सवारी का त्याग त्यागी को इसीलिए होता है। श्री क्षेत्र कुण्डल से विहार करते-करते महाराज जिनमंदिर का दर्शन करते -करते नसलापुर, ऐनापुर, अथणी इस मार्ग से बीजापुर के पास अतिशय क्षेत्र ''बाबानगर'' को आये। पुण्यक्षेत्र के सहस्रफणी श्री पार्श्वनाथ भगवान का दर्शन करते हुए लौटकर पुनः ऐनापुर आये। वहाँ वे 15 दिन तक ठहरे। यहाँ योगायोग से निर्ग्रंथ मुनिराज श्री आदिसागर जी महाराज का सत्समागम मिला।

भगवती निर्वाणरूपा जिनदीक्षा –

निपाणी संकेश्वर के समीप ''यरनाळ'' ग्राम में पंचकल्याणक महोत्सव के लिए मुनिराज श्री देवेन्द्रकीर्तिजी पधारे थे। ऐलक सातगौंडा महाराज भी वहाँ पहुँचे। उन्होंने गुरु श्रीदेवेन्द्रकीर्ति स्वामी को दिगम्बर दीक्षा देने के लिए पुनः प्रार्थना की। एकत्रित जैन समाज को महाराजजी की योग्यता का पूरा परिचय था। वे महाराजजी से प्रभावित भी थे। मुनि दीक्षा के लिए समाज भर ने एक स्वर से अनुमोदना की।

निर्ग्रंथ दीक्षा लेने का विचार निश्चित हुआ। दीक्षा कल्याणक के दिन तीर्थंकर भगवान् का वन विहार का जुलूस दीक्षा वन में आया। इसी पवित्र समय में ऐलकजी ने भी दीक्षागुरु श्री देवेन्द्रकीर्ति महाराज के पास दिगम्बरी जिनदीक्षा धारण की। 'नैर्ग्रंथ्य हि तपोऽन्यत्तु संसारस्थैव साधनम्।' यह दृढ़धारणा थी। भगवान् की दीक्षा विधि के साथ ऐलक महाराजजी की भी

निर्ग्रंथ दीक्षा विधि सम्पन्न हुई, केशलोंच समारम्भ भी हुआ। ऐलक सातगौंडा मुनि हो गये, यथाजातरूपधारी हुए। मुनि पद का नाम श्री ''शांतिसागर'' रखा गया। ईसवी सन् 1920 में फाल्गुन शुक्ला 14 उनकी दीक्षातिथि है। इस पवित्र दिन से महाराज श्री का जीवनरथ अब संयम के राजमार्ग द्वारा मोक्षमहल की ओर अपनी विशिष्ट गति से सदा गतिशील ही रहा। अंतरंग में परिग्रहों से अलिप्तता का भाव सदा के लिए बना रहना और बाह्य में परिग्रह मात्र से स्वयं को दूर रखना यह मुनि की अलौकिक चर्या है। शुद्ध आत्मस्वरूप मग्नता यह उसका अन्तःस्वरूप होता है। देह के प्रति भी ममत्व का लेश नहीं होता, वे विदेही भावों के राजा होते हैं इसीलिए लोग उन्हें महाराज कहते हैं।

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों के विषयों पर विजय, छह आवश्यक तथा सात शेष गुण इत्यादि 28 मूलगुणों के ये धारक होते हैं।

भारत-विहार –

यरनाळ में दीक्षा समारंभ समाप्त होने के अनंतर महाराज ने अनेक नगरों में विहार करके धर्मप्रभावना की। महाराज जी के विहार काल में कोण्णूर का चातुर्मास बड़ा महत्वपूर्ण रहा। यहाँ महाराज की जीवनी में अतिशय महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं। कोण्णूर ग्राम में प्राचीन गुफाएं बहुसंख्या में हैं। नित्य की तरह गुफा में आचार्य श्री ध्यानस्थ बैठ गये। उसी समय एक नागराज – बड़ा सर्प वहाँ आकर महाराज जी के शरीर पर चढ़कर घूमने लगा। महाराज जी अपने आत्मध्यान में निमग्न थे। 'नागराज आया है और वह अपने शरीर पर घूम रहा है' इसका तनिक विकल्प भी महाराज जी को नहीं था। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति की पालना किस प्रकार हो सकती है, इसका यह मूर्तिमान रूप दृष्टिगोचर हुआ। महाराज जी के दर्शनार्थ जो लोग वहाँ पहुँचे थे, उन्होंने यह घटना प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखी। वे साश्चर्य दिङ्मूढ़ हो बैठे रहे। वे सांप से डरते थे। सांप भी जनता से घबड़ाता था। महाराज का आश्रय इसीलिए उसने लिया था। महाराज जी का दिव्य आत्मबल देखकर वहाँ आये हुए यात्रियों में से प्रमुख श्रेष्ठी श्रीमान सेठ खुशालचंद जी पहाड़े और ब्र. हीरालाल जी बड़े प्रभावित हुए। दोनों सज्जन विचक्षण थे। दक्षिण यात्रा के लिए निकले हुए यात्री थे। मिरज पहुँचने के बाद पता चला कि निकट ही दिगम्बर साधु हैं। इसलिए परीक्षा के हेतु वे वहाँ पर पहुँचे थे। उनकी अपनी धारणा थी कि इस काल में साधक का होना असंभव है। भरी सभा में 'क्या आपको अवधिज्ञान है? या आपको ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त है?'' आदि वैयक्तिक आचार विषयक प्रश्न भी पूछने लगे। कुछ उलाहना का अंश भी जरूर था। सम्मिलित भक्तगणों में कुछ ऐसे जरूर थे, जो इन सवालों का जवाब मुट्ठियों से देने के लिए तैयार हो गये। मुनि महाराज ने भक्तों को रोका। एक-एक सवाल का जवाब यथानाम ''शांतिसागर जी'' ने शांति से ही दिया। समागत दोनों परीक्षक अत्यधिक प्रभावित हुए, उसी समय दीक्षा के लिए तैयार भी हो गये। महाराज जी ने ही उन्हें रोककर यात्रा पूरी करने का और कुटुम्ब परिवार की सम्मति लेने को कहा। जब महाराज बाहुबली (कुम्भोज) आये, तब वहाँ आकर उक्त दोनों सज्जनों ने महाराज जी के पास क्षुल्लक पद की दीक्षा धारण की। दीक्षा के बाद श्री सेठ खुशालचंद जी क्षुल्लक 'चन्द्रसागर' तथा श्री ब्र. हीरालाल जी का क्षुल्लक ''वीरसागर'' नामांकन हुआ। समडोली के चातुर्मास में आचार्यश्री के पास क्षुल्लक वीरसागर जी ने निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण की। यही महाराज के प्रथम निर्ग्रंथ शिष्य थे। आचार्यश्री ने आगे चलकर अपने समाधिकाल में श्री वीरसागर महाराज को ही उन्मुक्त भावों से आचार्यपद प्रदान किया। श्री वीरसागर जी की दीक्षा विधि हुई। कुछ ही समय बाद ऐलक नेमण्णा ने भी मुनिदीक्षा धारण की। नाम श्री 'नेमिसागर' रखा गया।

आचार्यपद की प्राप्ति व महत्वपूर्ण तीर्थरक्षा कार्य –

समडोली ग्राम में ही सर्वप्रथम आचार्यश्री का चतुःसंघ स्थापन हुआ। अब तक केवल अकेले महाराज ही निर्ग्रंथ साधु स्वरूप में विहार करते थे। अब संघ सहित विहार होने लगा। संघ ने उनको 'आचार्य' घोषित किया। आचार्य महाराज का संघ पर वीतराग शासन बराबर चलता था। संघ सहित विहार करते-करते महाराज कुम्भोज से श्री सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरी आये। क्षेत्र पर श्री देशभूषण और कुलभूषण मुनिद्वय की चरण पादुकाओं का पावन दर्शन किया। विहारकाल का उपयोग महाराज श्री जाप्य तथा मंत्र स्मरण के लिए विशेष रूप से कर लेते थे।

श्री सम्मेदशिखर जी की ऐतिहासिक पावन यात्रा –

(चलता फिरता वीतरागता और विज्ञानता का विश्वविद्यालय)

ई. सन् 1927 के मार्गशीर्ष वदी प्रतिपदा के दिन श्री सम्मेदशिखर जी क्षेत्र की वंदना और धर्मप्रभावना के उद्देश्य से आचार्यश्री 108 शांतिसागर जी महाराज की विहार यात्रा संघ सहित बाहुबली (कुम्भोज) क्षेत्र से शुरू हुई।

बम्बई निवासी पुरुषोत्तम श्रीमान सेठ पूनमचंद जी घासीलाल जी और उनके सुपुत्रगण आचार्यश्री के पास पहुँचे।

उन्होंने आचार्यश्री को ससंघ श्री सम्मेदाचल यात्रा को ले चलने का संकल्प प्रकट किया।

नागपुर में संघ का अपूर्व स्वागत हुआ। जुलूस तीन मील लम्बा निकला था। शहर के बाहर इतवारी में स्वतंत्र 'शांतिनगर' की रचना की गयी थी। कांग्रेस के पंडाल से शांतिनगर का पंडाल कुछ छोटा नहीं था। जनता आज भी उस समय की अपूर्व घटनाओं की स्मृति से आनंद का अनुभव करती है और स्वयं को धन्य मानती है।

संघ की विदाई हृदयद्रावक थी। साश्रुनयनों से श्रावक-श्राविकाओं को अनिवार्यरूप से विदाई देनी पड़ी। दिनाँक 9 जनवरी 1928 को संघ का नागपुर छोड़कर भंडारा मार्ग से विहार शुरू हुआ। छत्तीसगढ़ के भयंकर जंगलमय विकट मार्ग से निर्बाध होते हुए संघ हजारीबाग आया। बाद में फाल्गुन शुक्ला तृतीया के दिन तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर जी सिद्धक्षेत्र को पहुँचा।

यहाँ पर श्री संघपति जी के द्वारा व्यापकरूप में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव द्वारा महती धर्मप्रभावना हुई। भीड़ की सीमा न थी। भारत के कोने-कोने से श्रावक-श्राविकाएँ अत्यधिक प्रमाण में पहुँचे। इसी समय हजार से ज्यादा कपड़ों की झोपड़ियाँ बनवायी गई थीं। धर्मशालाएँ खचाखच भर गईं।

तीर्थक्षेत्र कमेटी तथा महासभा आदि कई सभाओं के अधिवेशन भी हुए। तीर्थराज जयध्वनि से गूँज उठा था। धर्मशालाओं के बाहर भी यत्र-तत्र लोग अपना स्वतंत्र स्थान जमाए हुए नजर आते थे। नीचे धरती ऊपर आसमान, पूर्ण निर्विकल्प होकर जनता प्रतिष्ठा यात्रा के उन्मुक्त आनन्द रस का पान करती थी। लोग कहते हैं यात्री कहीं तीन लाख से ऊपर होंगे। अस्तु! पंडित आशाधरजी के शब्दों में कहना होगा, 'दलित कलिलीला-विलसितम्' यही पर्वतराज का सजीव मनोहारी दृश्य था। अनेक भाषा, अनेक वेशभूषा में व्यापक तत्त्व की एकता का होने वाला प्रत्यक्ष दर्शन अलौकिक ही था। निर्विकल्प वस्तु के अनुभव के समय विशेष का तिरोभाव और सामान्य का आविर्भाव होता ही है ठीक इसी तरह सांस्कृतिक एकता का यह सजीव स्वरूप प्रभावशाली बन गया।

श्री सम्मेदशिखर की वंदना करके वहां से मंदारगिरी, चम्पापुरी, पावापुरी, कुण्डलपुर, राजगृही, गुणावां आदि अनेक पवित्र तीर्थ क्षेत्रों की संघ ने यात्रा की।

स्वर्गीय 108 पायसागर जी महाराज आचार्य श्री को पारसमणि की उपमा देते थे। अपनी जीवनी के आधार से ही समादर की भावनाओं से वे अपने प्रवचनों में आचार्यश्री के विषय में गौरवगाथा गाते थे। स्व. आचार्यश्री कुंथुसागर महाराज जी आचार्यश्री के शिष्यों में से उद्भट संस्कृतज्ञ प्रवक्ता रहे, जिनके द्वारा गुजरात में विशेष प्रभावना हुई। आचार्यश्री वीरसागर जी की शिष्य परम्परा से जो जागरण का कार्य हुआ, वह अविस्मरणीय एवं सातिशय ही है।

आक्रमण से संघ ऐसे बच पाया –

दिनाँक 6 जनवरी 1930 में संघ धौलपुर स्टेट के राजाखेड़ा शहर में पहुँचा। तीन-चार दिन तक महती धर्मप्रभावना हुई। यह धर्मप्रभावना भी एक अजैन भाई को सहन नहीं हुई। एक संगठन बन गया। लाठी, काठी, तलवार आदि शस्त्रास्त्रों के साथ करीब 500 लोगों के आक्रमण की गुप्त योजना भी बन गई।

मृगमीनसज्जनानां, तृणजल-संतोष-विहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धक-धीवर-पिशुनः, निष्कारण वैरिणो जगति।।

घासपत्ती पर अपना गुजारा करने वाले हिरन, जल में अपना निर्वाह करने वाली मछलियाँ और सन्तोषामृत का पान करने वाले साधु पुरुषों से भी शिकारी, मछलीमार और दुर्जन व्यर्थ ही शत्रुता करते हैं। यह सनातन दुष्टता की परंपरा संसार में चली ही आ रही है। इसका प्रत्युत्तर राजाखेड़ा में आया। छिद्दीलाल ब्राह्मण के नेतृत्व में आक्रमण की तैयारी हो गई थी। संघ का हत्याकाण्ड होने को ही था कि महाराज की अंतरंग स्वच्छता से अंतर्ज्ञान द्वारा जो कुछ भी संकेत मिला हो, उन्होंने संघस्थ त्यागियों से प्रतिदिन की अपेक्षा शीघ्र आहार करके लौटने को कहा। तदनुसार समस्त त्यागी चर्या करके 9 बजे के भीतर ही मंदिर जी में वापिस लौट आये। आक्रामक लोग नारे लगाते हुए मंदिर जी की ओर बढ़े। जैनियों ने इस प्राणांतिक आक्रमण का प्रतिकार भी किया। स्टेट की ओर से पुलिस सहायता भी दौड़ी हुई आयी। पुलिस दल ने आक्रामकों को गिरफ्तार कर लिया लेकिन महाराज जी ने करुणाभाव प्रदर्शित कर उनको छोड़ देने के लिए पुलिस अधिकारी मंडल को बाध्य किया।

सामंजस्यपूर्ण दूरदृष्टिता –

जातिलिंगविकल्पेन, येषां च समयाग्रहः।
तेऽपि न प्राप्नुवंति, परमं पदमात्मनः।।

अर्थात् जाति और वेष-परिवेष का विकल्प साधना में पूरा बाधक एवं हेय होता है। इसी प्रकार तेरहपंथ या बीसपंथ के विकल्पों से आत्म साधना अर्थात् परमार्थ-भूत धर्मसाधना

अत्यन्त दूर होती है। धर्मदृष्टि के अभाव का ही परिणाम है। टंकोत्कीर्ण धर्म साधन लुप्त प्रायः होती जा रही है और तेरह-बीस पंथ के झगड़े दृढ़मूल बनाए जा रहे हैं और उन्हें धर्माचार का रूप दिया जा रहा है। समाज में आज भी जो भाई तेरह और बीस पंथ के नाम से समय-समय पर वितंडा उपस्थित करते हैं और समाज के स्वास्थ्य को ठेस पहुँचाते हैं, उनकी उस प्रवृत्ति को जो समाज के लिए महारोग के समान है, हम समझते हैं आचार्यश्री का सामंजस्यपूर्ण दूरदृष्टिता का व्यवहार एक अद्‌भुत कल्याणकारी अमृतोपम रसायन हो सकता है।

चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री –

संघ विहार करता हुआ गजपंथा सिद्धक्षेत्र पर आया। यहाँ पर सम्मिलित सब जैन समाज ने आचार्यश्री को ''चारित्र-चक्रवर्ती'' पद से विभूषित किया। महाराजश्री की आत्मा निरंतर निरूपाधिक आत्मस्वरूप के अमृतोपम महास्वाद को सहज प्रवृत्ति से बराबर लेने में परमानंद का अनुभवन करती थी। उन्हें इस उपाधि से क्या? वे पूर्ववत् उपाधि-शून्य स्वभावमग्न ही थे। साधु परमेष्ठी या आचार्य परमेष्ठी के आंतरिक जीवन का यथार्थ दर्शन यह चक्षु का विषय नहीं होता। वह अपनी शान का अलौकिक ही होता है। जहाँ जीवनाधार श्वासोच्छ्वास की तरह इन परमेष्ठियों का श्वांस आत्मा को स्वात्मा में स्थिर बनाये रखने के लिए होता है, वहाँ उच्छ्वास विश्व में अपनी आदर्श प्रवृत्ति के द्वारा शांति स्थापना में और धर्मप्रभावना में उत्कृष्ट निमित्त के रूप में उपस्थित होने के लिए होता है। आचार्यश्री की लोकोत्तम, लोकोत्तर अलौकिकता और वैभवशाली विभूतिमत्ता इसी में थी। ''चारित्र-चक्रवर्ती'' उपाधि का महाराज को तो कोई हर्ष-विषाद ही नहीं था। ''चारित्र के चक्रवर्ती तो भगवान् ही हो सकते हैं। हम तो लास्ट नम्बर के मुनि हैं। हमें उपाधि से क्या? स्वभाव से निरूपाधिक आत्मा ही हमारी शरण है।'' समाज ने उनकी गुणग्राहकता और त्याग-संयम के प्रति निष्ठा का जो औचित्यपूर्ण दर्शन किया, वह योग्य ही हुआ।

कुंथलगिरी क्षेत्र पर बृहज्जिनबिम्ब का विकल्प –

कुंथलगिरी दक्षिण का सीमावर्ती सुन्दर सिद्धक्षेत्र है। ''यहाँ पर एक विशालकाय बाहुबली भगवान की मूर्ति हो तो अच्छा होगा।'' यह भव्य आशय कमेटी के सभी सदस्यों को एकदम पसंद आया। पूज्य आचार्यश्री के समक्ष कार्य पूरा होना असंभव था। महाराज जी ने यम सल्लेखना का नियम कर ही लिया था। इसी अवसर पर एक समाचार विदित हुआ कि दक्षिण में म्हैसूर स्टेट के अंतर्गत ''बस्ती हल्ली'' देहात में एक 15 फुट ऊँची मनोज्ञ मूर्ति है और वह एक अजैन भाई के खेत में करीब अज्ञात अवस्था में पड़ी हुई है, उसी को लाकर खड़ी करने का विचार किया गया। स्व. श्रीमान् सेठ राव जी देवचंद शहा आदि सज्जन स्वयं वहाँ पहुँचे। काफी प्रयास किया गया परन्तु सफलता नहीं मिल पायी। केवल फोटो मात्र मिल पाया। उसे ही सिर पर रखकर आचार्यश्री ने धन्यता के भाव प्रगट किये। वीतरागता की साधना में परम वीतराग मूर्ति के दर्शन से अद्‌भुत आनन्द की और धर्मोल्लास की लहर होना सहज था। आचार्यश्री की चर्या पर वह दृष्टिगोचर हुई। आचार्य महाराज के भव्य भावों की पूर्ति होनी ही चाहिए, इस प्रकार का भव्य भाव समीपवर्ती सेवाभावी सरल प्रकृति श्रेष्ठीवर्य श्रीमान् नेमचन्द जी मियाचंद जी गांधी, नातेपुते के चित्त में आया। ''यदि महाराज जी की आज्ञा हो, तो इसी क्षेत्र के ऊपर 18-20 फुट ऊँची बाहुबली भगवान् की मूर्ति विराजमान करने का मेरा भाव है'' इसके पश्चात् सन् 1970 में 18 फीट ऊँची बाहुबली भगवान् की मूर्ति पहाड़ी के ऊपर पूर्वाभिमुख विराजमान होकर प्रतिष्ठा भी सम्पन्न हो गई। इस प्रकार एक तरह से महाराज के सम्पूर्ण काम सिद्ध हुए।

हीरक जयंती महोत्सव –

जैनियों की दक्षिणकाशी फलटण नगरी धर्मकार्यों को उत्साह तथा उल्लास के साथ करती ही आ रही है। सन् 1952 की घटना है। पूज्य श्री की जीवनी के 80 वर्ष पूरे हुए। इस प्रसंग से हीरक जयंती महोत्सव सम्पन्न करने का निर्णय एक स्वर से किया गया। आचार्यश्री को उत्सवों से कोई हर्ष-विषाद नहीं था। एक तरह से त्याग तपस्या का ही यह गौरव था। जून की दिनाँक 12, 13, 14 ये तीन दिन विशेष आनन्दोत्सव के रहे। सर्वत्र चहल-पहल रही। भारत के कोने-कोने से हजारों भाई फलटण पहुँचे। इंदौर से सर सेठ राजकुमार सिंह जी, सरसेठ हीरालाल जी पहुँचे। बम्बई से सेठ रतनचंद जी, सेठ लालचंद जी, अजमेर से सेठ भागचंद जी, कलकत्ता, देहली, कोल्हापुर, नांदगांव, नागपुर, सिवनी, जबलपुर, बेलगांव, बाहुबली, सांगली, शेडवाल, भोज आदि शहरों से सज्जन उत्सव में सम्मिलित हुए, सभा सम्मेलन हुए। योजनाबद्ध रूप से विनयांजलियों का समर्पण हुआ, पूजा प्रभावना हुई। ताम्रपत्रों के ऊपर उत्कीर्ण धवलादि ग्रंथों का हाथियों के ऊपर जुलूस निकालकर वे ग्रंथ भक्ति-भावपूर्वक पूज्य आचार्यश्री को समारोह के साथ समर्पण किये गये। छोटे-मोटे सभी कार्यों में विशेष सातिशय सजीवता दिखलायी देती थी। स्वयं फलटण स्टेट के अधिपति श्रीमान् मालोजीवराव निंबालकर फलटण नगरी

का यह अहोभाग्य समझते रहे। हीरक जयंती महोत्सव के निमित्त से एक सचित्र स्मरणिका प्रकाशित हुई, जिससे उत्सव का सचेतन स्वरूप सुस्पष्ट होता है। इस समय महाराजश्री के अनुभव रसपूर्ण हुए। 'रत्नत्रयधर्म की साधना जीवन का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। धर्म से ही शेष पुरुषार्थों की प्राप्ति एवं सफलता होती है' ऐसे ही भावपूर्ण वक्तव्य हुए। आचार्यश्री जीवन के क्षणों का मूल्य बराबर जानते थे। उपचार और परमार्थ दोनों का परिज्ञान उन्हें बराबर था। सदा की भांति वे अपनी आत्म साधना में विशेष तन्मय हुए। रत्नत्रयों के श्रेष्ठ आराधक रत्नत्रयों के अकम्प प्रकाश में अविचलरूप से सुस्थित थे। निर्ग्रन्थ साधु की विशेषता के पुण्यदर्शन बराबर होते थे। आचार्य महाराज खूब जानते थे।

तिथिपर्वोत्सवा सर्वे, व्यक्ता येन महात्मना।
अतिथि तेऽवजानीयात् शेषमभ्यागतं विदुः।।

सब ही तिथियाँ, पर्व और उत्सव संबंधी विकल्पों से ये महर्षि सदा ही दूर होते हैं इसीलिए इनका यथार्थ नाम 'अतिथि' होता है।

सूक्ष्म से सूक्ष्म विचार करने पर आत्मा तो यही कहती है कि, महाराज वर्तमान युग के महान् सत्पात्र तो रहे ही हैं परन्तु उनके द्वारा जो ज्ञानदान और दृष्टिदान हुआ है, उससे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि महाराज श्रेष्ठ से श्रेष्ठ दानी भी रहे। पात्र समझकर जो चढ़ाया गया, वह थोड़ा था और दाता समझकर जो कुछ समाज के द्वारा लिया गया वह भी थोड़ा था, इस सत्य को स्वीकार करना होगा।

आदर्श सल्लेखना –

विचार और भावनाओं का समान संयोग आचार्यश्री के जीवन की एक विशेषता थी। भावनाओं में आकर शक्ति को व्यर्थ खोना या व्यर्थ खोने का विकल्प करना यह असंभव था। भविष्य की आशा में वर्तमान को गंवाना वे प्रकाश के बदले में अंधकार को खरीदना जैसा मानते थे। वर्षों से अखण्ड रूप से की गयी हजारों मीलों की पदयात्रा, यथासंभव अनुकूल-प्रतिकूल आहार का संयोग, उपवासों की धाराप्रवाहिता, वृद्धावस्था, अल्पनिद्रा आदि कारणों से दृष्टि में पूर्व की अपेक्षा अधिकाधिक मंदता का अनुभव होने लगा। वैद्य और डाक्टरों से समय-समय पर बराबर परामर्श होता था। शुद्ध उपचारों का विशुद्ध भावनाओं से अमल भी होता था। दृष्टि विनाश होने के बाद समितियों का पालन और प्राणस्वरूप मुनिचर्या असंभव है, इसलिए साधनों की सुरक्षा सावधानीपूर्वक अप्रमाद भाव से आचार्यश्री प्रारंभ से ही करते रहे। दिनाँक 14-8-1955 को महाराज जी द्वारा सल्लेखना का ज्यों ही निर्णय प्रगट हुआ, समाज भर को, देशभर को भूचाल जैसा धक्का लगा, जो स्वाभाविक ही था। अंततोगत्वा आचार्य महाराज की 36 दिवसीय सल्लेखना के साथ 18 सितम्बर 1955, भाद्र शुक्ला दूज, रविवार को प्रातःकाल 6.50 पर ''ॐ सिद्धाय नमः'' के साथ समाधि पूर्ण हुई।

भजन

रचयित्री-आर्यिका चंदनामती

तर्ज-देख तेरे संसार.....

विश्व की सबसे ऊँची प्रतिमा बनी है आलीशान,
जय जय ऋषभदेव भगवान।।टेक.।।
ऋषभगिरी मांगीतुंगी में।
इक अखण्ड पाषाण खण्ड में।।
गणिनीप्रमुख ज्ञानमती माता की प्रेरणा महान,
जय जय ऋषभदेव भगवान।।1।।
ऋषभदेव प्रतिमा प्रगटी है।
गुरुमाता की तपशक्ती है।।
उनका गौरवमय ससंघ सानिध्य मिला है महान,
जय जय ऋषभदेव भगवान।।2।।
इक सौ अठ फुट की यह प्रतिमा।
जिनशासन की अद्भुत गरिमा।।
यह आश्चर्य प्रथम है जग में जैनधरम की शान,
जय जय ऋषभदेव भगवान।।3।।
यह है आयडल ऑफ अहिंसा।
भारत की पहचान अहिंसा।।
इसे ''चन्दनामती'' हृदय से कर लो सभी प्रणाम,
जय ऋषभदेव भगवान।।4।।
श्री रवीन्द्रकीर्ति का समर्पण।
भक्तों का अर्थाञ्जलि अर्पण।।
अमर रहेगा युग युग तक सबका तन मन धन दान,
जय जय ऋषभदेव भगवान।।5।।

ऐतिहासिक तपः साधना-आचार्यश्री के साढ़े 25 वर्षों से भी अधिक दिन के उपवासों का विवरण

उपवासों की संख्या	कितनी बार	उपवास के कुल दिन
1) 16 दिन का	3 बार	48
2) 10 दिन का	1 बार	10
3) 9 दिन का	6 बार	54
4) 8 दिन का	7 बार	56
5) 7 दिन का	6 बार	42
6) 6 दिन का	6 बार	36
7) 5 दिन का	6 बार	30
8) 4 दिन का	6 बार	24
9) अंतिम 36 दिन तक के उपवास में स्वर्गवास	1 बार	36
		योग-336 दिन

व्रत नाम	उपवासों की संख्या
1. चारित्रशुद्धि व्रत	1234
2. तीस चौबीसी व्रत	720
3. कर्मदहन व्रत (तीन बार)	468
4. सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत (तीन बार)	270
5. सोलहकारण व्रत (16/16)	256
6. श्रुतपंचमी व्रत	36
7. विहरमान व्रत (20 तीर्थंकर व्रत)	20
8. दशलक्षण पर्व	10
9. सिद्धों के व्रत (8)	8
10. अष्टाह्निका व्रत	8
11. गणधरों के व्रत गणधरों के 1452 उपवास होते हैं। आचार्य श्री 200 ही कर पाये थे।	200
12. अतिरिक्त व्रत	6372
	योग 9602

आचार्यश्री ने अपने जीवन में 336+9602=9938 उपवास किये हैं।

आचार्यश्री द्वारा सन् 1914 से 1955 तक किये गये 42 चातुर्मासों की सूची

	स्थान का नाम	अवस्था	सन्
1.	कागल ग्राम	क्षुल्लक अवस्था में	1914
2.	कोगनोली	क्षुल्लक अवस्था में	1915
3.	कुम्भोज	क्षुल्लक अवस्था में	1916
4.	बेलगाँव	क्षुल्लक अवस्था में	1917
5.	समडोली	ऐलक अवस्था में	1918
6.	नसलापुर	ऐलक अवस्था में	1919
7.	कागनोली	मुनि अवस्था में	1920
8.	नसलापुर	मुनि अवस्था में	1921
9.	ऐनापुर	मुनि अवस्था में	1922
10.	कोन्नूर	मुनि अवस्था में	1923
11.	समडोली	आचार्य पद प्राप्त	1924
12.	कुम्भोज	आचार्य अवस्था में	1925
13.	नांदडी	आचार्य अवस्था में	1926
14.	बाहुबली क्षेत्र	आचार्य अवस्था में	1927
15.	कटनी	आचार्य अवस्था में	1928
16.	ललितपुर	आचार्य अवस्था में	1929
17.	मथुरा	आचार्य अवस्था में	1930
18.	दिल्ली	आचार्य अवस्था में	1931
19.	जयपुर	आचार्य अवस्था में	1932
20.	ब्यावर	आचार्य अवस्था में	1933
21.	उदयपुर	आचार्य अवस्था में	1934
22.	गोरल	आचार्य अवस्था में	1935
23.	प्रतापगढ़	आचार्य अवस्था में	1936
24.	गजपंथा	चारित्रचक्रवर्ती पद प्राप्त	1937
25.	बारामती	चा.च. आचार्य अवस्था में	1938
26.	पावागढ़	चा.च. आचार्य अवस्था में	1939
27.	गोरल	चा.च. आचार्य अवस्था में	1940
28.	अकलूज	चा.च. आचार्य अवस्था में	1941
29.	कोरोची	चा.च. आचार्य अवस्था में	1942
30.	डिग्गज	चा.च. आचार्य अवस्था में	1943
31.	कुंथलगिरि	चा.च. आचार्य अवस्था में	1944
32.	फलटन	चा.च. आचार्य अवस्था में	1945
33.	कवलाना	चा.च. आचार्य अवस्था में	1946
34.	सोलापुर	चा.च. आचार्य अवस्था में	1947
35.	फलटन	चा.च. आचार्य अवस्था में	1948
36.	कवलाना	चा.च. आचार्य अवस्था में	1949
37.	गजपंथा	चा.च. आचार्य अवस्था में	1950
38.	बारामती	चा.च. आचार्य अवस्था में	1951
39.	लोणंद	चा.च. आचार्य अवस्था में	1952
40.	कुंथलगिरि	चा.च. आचार्य अवस्था में	1953
41.	फलटन	चा.च. आचार्य अवस्था में	1954
42.	कुंथलगिरि	चा.च. आचार्य अवस्था में	1955

(1955, भादों सुदी 2 को स्वर्गवासी हुए)

आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज-एक स्वर्णिम व्यक्तित्व

(आश्विन शु. ग्यारस-23 अक्टूबर 2015 को आचार्यश्री की 91वीं मुनिदीक्षा दिवस के अवसर पर प्रस्तुत)

-आर्यिका चन्दनामती

महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद जिले के वीर नामक ग्राम में रामसुख नाम के एक धर्मनिष्ठ श्रेष्ठी रहा करते थे। उन्होंने भाग्यवती नामक धर्मपरायण धर्मपत्नी को पाकर मानो सचमुच ही राम जैसे सुख को प्राप्त कर लिया था। गंगवाल गोत्रीय ये दम्पत्ति श्रावक कुल के शिरोमणि थे। प्रतिदिन मंदिर में जाकर देवदर्शन करना, भक्ति-पूजा-दान आदि उनके जीवन के आवश्यक अंग थे।

ईसवी सन् 1876 में आषाढ़शुक्ला पूर्णिमा (गुरुपूर्णिमा) के दिन भाग्यवती ने एक अपूर्व चाँद सदृश पुत्ररत्न को जन्म दिया जिसके आगमन की अप्रतिम प्रसन्नता ने माता की प्रसव वेदना भी समाप्त कर दी। इस होनहार बालक का नाम रख गया-हीरालाल। चंद्रमा की कलाओं के समान हीरालाल भी अपनी बालक्रीडाओं को करते हुए वृद्धिंगत होने लगे। हीरालाल जब 15 वर्ष के युवक हो गए। तब पिता के साथ व्यापार करने लगे किन्तु इनका चित्त उदासीन रहने लगा और ये अपना अधिक समय भगवान की पूजन, भक्ति एवं शास्त्र स्वाध्याय में व्यतीत करते। इन्होंने माता-पिता के अतीव आग्रह करने पर भी विवाह नहीं किया और आजन्म ब्रह्मचारी रहकर संसार समुद्र से पार होने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

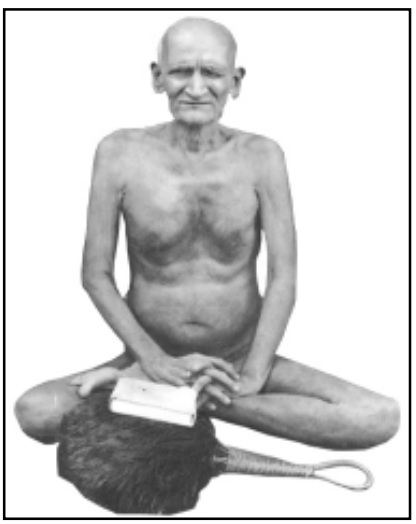

सन् 1916 में औरंगाबाद के निकट कचनेर नामक अतिशय क्षेत्र में धार्मिक पाठशाला खोलकर हीरालाल जी बालकों को निःशुल्क धार्मिक शिक्षण देने लगे पुनः औरंगाबाद में भी एक विद्यालय खोलकर उन्होंने धार्मिक अध्ययन कराया। दोनों जगह उन्होंने अवैतनिक अध्ययन कराया था और उस प्रान्त में सभी के द्वारा गुरूजी कहे जाने लगे थे। यह अध्ययनक्रम सात वर्ष तक चला जिसके मध्य निःस्वार्थ सेवाभाव से जनमानस के हृदय में जैनधर्म का अंश भर दिया था।

सन् 1921 में नांदगांव में ऐलक श्री पन्नालाल जी का चातुर्मास हुआ। चातुर्मास के समाचार सुनकर हीरालाल गुरुदर्शन की लालसा से नांदगांव पहुंच गए। अब तो हीरालाल को अपनी स्वार्थसिद्धि का मानो स्वर्ण अवसर ही प्राप्त हुआ था अतः मौके का लाभ उठाते हुए आषाढ़शुक्ला ग्यारस को ऐलक श्री पन्नालाल जी के पास सप्तमप्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए पुनः नांदगांव के ही एक प्रसिद्ध श्रावक खुशालचंद जी को हीरालाल ने अपना साथी बना लिया अर्थात् उनके हृदय के अंकुरित वैराग्य को बीजरूप दे दिया और उन्होंने भी सप्तमप्रतिमा के व्रत ले लिए।

ब्र. हीरालाल और खुशालचंद अभी योग्य गुरु के अभाव में इससे आगे नहीं बढ़सके थे। इसी अवस्था में उन्होंने घी, नमक, तेल और मीठे का जीवनपर्यंत के लिए त्याग कर दिया था।

सच्चे हृदय से भाई गई भावना अवश्य एक दिन भवनाशिनी सिद्ध होती है-एक बार हीरालाल जी को ज्ञात हुआ कि दक्षिण के कोन्नूर ग्राम में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज नाम के दिगम्बर मुनि विराजमान हैं। बस फिर क्या था, दोनों ब्रह्मचारी शीघ्र ही आचार्यश्री के पास पहुँच गए। दर्शन-वंदन करके आशीर्वाद प्राप्त किया। जिस प्रकार आचार्य धरसेन स्वामी के पास पुष्पदंत और भूतबलि दो शिष्य उनकी इच्छापूर्ति के लिए पहुँचे थे उसी प्रकार मानो आचार्यश्री शांतिसागर महाराज के पास युगल ब्रह्मचारी उनकी अविच्छिन्न परम्परा चलाने का भावी स्वप्न संजोकर पहुँचे थे।

गुरुवर की कठोर तपश्चर्या और त्याग की चरम सीमा को देखकर दोनों बड़े प्रभावित हुए और उन्हीं से दीक्षा लेना निश्चित कर लिया। आचार्यश्री ने दोनों भव्यात्माओं को दूरदृष्टि से परखकर दीक्षा देना तो स्वीकार कर लिया

किन्तु एक बार घर जाकर परिवारजनों को सन्तुष्ट करके क्षमायाचनापूर्वक आज्ञा लेकर आने का आदेश दिया।

संसारसिंधुतारक गुरुदेव का आदेश शिरोधार्य करते हुए युगल ब्रह्मचारी अपने घर आ गए। औपचारिकरूप से सबसे क्षमायाचना करके स्वीकृति माँगी। सबके मोह को त्यागकर हीरालाल जी अब पूर्ण निश्चिंत होकर खुशालचंद को साथ लेकर वापस आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के पास पहुँच गए। उस समय आचार्यश्री कुम्भोज नगर में विराजमान थे। गुरुचरणों में पहुँचकर हीरालाल प्रसन्नता के अथाह सागर में गोते लगाने लगे। उनको नमन कर पुनः दीक्षा के लिए याचना की।

आचार्यदेव ने ब्रह्मचारीयुगल को सर्वप्रथम श्रावकोत्तम क्षुल्लक दीक्षा देने का निर्णय किया और शुभमुहूर्त निकाला फाल्गुन शुक्ला सप्तमी, वि.सं. 1980 का पवित्र दिवस।

हीरालाल यद्यपि सीधे मुनिदीक्षा को ही धारण करना चाहते थे किन्तु आचार्यश्री की आज्ञानुसार शारीरिक परीक्षण हेतु क्षुल्लक दीक्षा में ही सन्तोष प्राप्त किया। गुरुदेव ने सभा के मध्य ब्र. हीरालाल को क्षुल्लक वीरसागर और ब्र. खुशालचंद को क्षुल्लक चंद्रसागर नाम से सम्बोधित किया, जिसका सभी ने जय-जयकारों के साथ स्वागत किया। कुछ ही दिनों में (सन् 1924 में) संघ समडोली ग्राम में पहुँचा और वहीं वर्षायोग स्थापना हुई।

वहाँ एक दिवस क्षुल्लक वीरसागर ने आचार्यश्री के पास जाकर निवेदन किया–

गुरुदेव! मैं मुनिव्रत की दीक्षा लेना चाहता हूँ । आप विश्वास रखें, मैं आपके निर्देशानुसार प्रत्येक चर्या का निर्दोष रीति से पालन करूँगा।

शिष्य की तीव्र अभिलाषा एवं पूर्ण योग्यता देखकर वि.सं. 1981, **सन् 1924 में आचार्यश्री ने समडोली में आश्विन शु. 11 को इन्हें मुनि दीक्षा प्रदान की।** अब तो वीरसागर जी क्षुल्लक से मुनि वीरसागर बन गए और मानो आज तो त्रैलोक्यसम्पदा ही प्राप्त हो गई हो।ऐसी असीमित प्रसन्नता वीरसागर जी ने अपने जीवन में प्रथम बार प्राप्त की थी। इसीलिए आचार्यश्री शांतिसागर महाराज के प्रथम शिष्य होने का परम सौभाग्य मुनि वीरसागर जी को ही प्राप्त हुआ।

मुनि दीक्षा के पश्चात् आपने आचार्य संघ के साथ दक्षिण से उत्तर तक बहुत सी तीर्थवंदनाएँ करते हुए पदविहार किया। गुरुदेव के चरण सानिध्य में अनमोल शिक्षाओं को जीवन में गाँठ बाँधकर आपने रखने का निर्णय किया था इसीलिए अन्त तक गुरुभक्ति का प्रवाह हृदय में प्रवाहित रहा।

आचार्यश्री के साथ आपने 12 चातुर्मास किए। उन गाँवों के नाम इस प्रकार हैं–

श्रवणबेलगोल, कुम्भोज, समडोली, बड़ी नांदनी, कटनी, मथुरा, ललितपुर, जयपुर, ब्यावर, प्रतापगढ़, उदयपुर तथा देहली।

तब तक आचार्यश्री के 12 शिष्य बन चुके थे–

मुनि वीरसागरजी, चन्द्रसागर, नेमिसागर, कुन्थुसागर, सुधर्मसागर, पायसागर, नमिसागर, श्रुतसागर, आदिसागर, अजितसागर, विमलसागर, पार्श्वकीर्ति ।

एक बार आचार्यश्री ने सभी शिष्यों को निकट बुलाकर धर्मप्रचारार्थ अलग-अलग विहार करने का आदेश दिया और संघ को 2-3 भागों में विभक्त कर दिया।

गुरुवर्य का आशीर्वाद प्राप्तकर सभी ने यत्र-तत्र विहार किया एवं आचार्यश्री की समस्त शिक्षाओं के माध्यम से धर्मप्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। प्रमुख शिष्य मुनि वीरसागर जी ने अपने साथ में मुनि श्री आदिसागर और अजितसागर महाराज को लेकर विहार किया।

सन् 1935 में मुनि श्री वीरसागर जी के पृथक् संघ का प्रथम चातुर्मास गुजरात के ईडर शहर में हुआ, जहाँ अपूर्व धर्मप्रभावना हुई।

शिष्यपरम्परा की शृँखला में वीरसागर जी के मुनियों में प्रथम शिष्य शिवसागर जी बने, जो भविष्य में गुरु के पट्टाचार्य पद को सुशोभित कर संघ संचालन का श्रेय प्राप्त कर चुके हैं।

बीस वर्षों के लम्बे अन्तराल के पश्चात् सन् 1955 में कुंथलगिरि क्षेत्र पर आचार्यश्री शांतिसागर महाराज ने चातुर्मास किया था। इधर वीरसागर महाराज अपने चतुर्विध संघ सहित जयपुर खानिया में चातुर्मास कर रहे थे। हजारों मील की दूरी भी गुरु-शिष्य के परिणामों का मिलन करा रही थी।

आचार्यश्री ने अपने जीवन का अंतिम लक्ष्य यम सल्लेखना ग्रहण कर ली थी। इस समाचार से उनके समस्त शिष्यों एवं सम्पूर्ण जैनसमाज के ऊपर एक वज्रप्रहार सा प्रतीत होने लगा था। कुंथलगिरि में प्रतिदिन हजारों व्यक्ति

इस महान आत्मा के दर्शन हेतु आ-जा रहे थे।

सल्लेखना की पूर्व बेला में ही आचार्यश्री ने अपना आचार्यपद त्याग कर दिया और संघपति श्रावक श्री गेंदनमल जी जौहरी, बम्बई वालों से अपने प्रथम शिष्य मुनि श्री वीरसागर महाराज को सर्वथा आचार्यपद के योग्य समझकर एक आदेशपत्र जयपुर समाज के नाम लिखाकर भेजा।

इसके पूर्व श्री वीरसागर जी महाराज ने कभी भी अपने को आचार्य शब्द से सम्बोधित नहीं करने दिया था, यह उनकी पदनिर्लोभता का ही प्रतीक था। पुनः सन् 1955 में गुरुदेव के प्रथम पट्टाचार्य पद पर अभिषिक्त होकर आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज अपनी गुरुपरम्परा के आधार पर अपने चतुर्विध संघ का संचालन करने लगे।

आचार्यश्री की प्रमुख शिष्याओं में से पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी कई बार अपने गुरुदेव के संस्मरण सुनाते हुए कहा करती हैं कि–

आचार्यश्री प्रायः सायंकाल के समय समस्त शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहते थे कि देखो! तुम शिष्यगण मेरे अनुशासन में रहकर एकता के सूत्र में बंधे हो इसीलिए मेरे आचार्यपद की गरिमा है, क्योंकि गुरु से शिष्यों की और शिष्यों से गुरु की शोभा रहती है। उनकी शिक्षाओं में प्रमुख शिक्षा थी–

जीवन में सदैव सुई का काम करो, कैंची का नहीं अर्थात् समाज एवं परिवार में रहकर संगठन के कार्य करो, विघटन के नहीं। क्योंकि कैंची कपड़े को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देती है लेकिन एक छोटी सी सुई उन टुकड़ों को भी सिलकर एक कर देती है। उसी प्रकार से कभी ऐसे कार्य मत करो जिससे संघ के टुकड़े हों, सब लोग सहनशील बनकर संगठन के धागे से बंधे रहो। यही कारण था कि आचार्यश्री के जीवनकाल तक कोई भी शिष्य उन्हें छोड़कर कभी संघ से अलग नहीं हुआ।

सम्यक्त्व की दृढ़ता हेतु वे कहा करते थे-

तृण मत बनो, पत्थर बनो। पाश्चात्य संस्कृतिरूपी हवा के झकोरे में जो तृणवत् हल्के हैं, अस्थिर बुद्धि के हैं, वे बह जाते हैं किन्तु जो पत्थर के समान अचल हैं, जिनवाणी के दृढ़श्रद्धालु हैं, वे अपने स्थान पर एवं सम्यक्त्व में अचल रहते हैं। वे गुरुदेव सम्यक्त्व में सदैव स्वयं भी अचल रहे हैं और अपने शिष्यों को भी आगममार्ग में अचल रखा है।

कभी-कभी महाराज पुत्रवत् अपने शिष्यों के मुँह से अपने-अपने रोगों की चर्चा सुनकर हँसकर कहते कि–

मुझे तो मात्र दो रोग हैं-एक तो भूख लगती है, दूसरे नींद आती है अर्थात् जिनके ये दो रोग समाप्त हो जावेंगे, वे संसारी ही नहीं रहेंगे बल्कि मुक्त कहलाएँगे अतः इन्हीं दो रोगों के नष्ट करने का उपाय करना चाहिए।

शिष्य परिकर के मनोरंजन हेतु श्री वीरसागर महाराज सदैव कुछ न कुछ घूँटी पिलाने का प्रयास करते हुए कहते–

अपने दीक्षा दिवस को कभी मत भूलो अर्थात् दीक्षा के समय परिणामों में विशेष निर्मलता रहती है इसीलिए उस दिवस के उज्ज्वल भावों को हमेशा याद रखने वाला साधु कभी भी अपने पद से च्युत नहीं हो सकता है और उत्तरोत्तर चारित्र की वृद्धि ही होती है।

ऐसे अनेकों सूत्ररूप वाक्य हैं जिन्हें आचार्यश्री अपने जीवनकाल में प्रयोग करते थे।

गाँव-गाँव, नगर-नगर में विहार करते हुए आचार्यश्री ने अनेकों स्थानों पर सदियों से चली आ रही हिंसक बलिपरम्परा को देखा, तब उन्होंने अनेक युक्तियों से पंच पापों के फल के दर्दनाक वर्णनपूर्वक अपने उपदेशों से बलिप्रथा बंद करवाई।

वर्तमान परम्परा के अनुसार उस समय दिगम्बर जैन साधुओं के अलग-अलग संघ नहीं थे और न उनकी कोई भिन्न-भिन्न परम्पराएँ थीं किन्तु सारे हिन्दुस्तान में आचार्य श्री शांतिसागर महाराज की आदर्श परम्परा वाला आचार्य श्री वीरसागर महाराज का संघ ही कहा जाता था। सम्पूर्ण अनुशासन पट्टाधीश आचार्यश्री का ही चलता था जिसका पालन आज तक भी उस पट्ट परम्परा वाले संघों में हो रहा है।

आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज ने अपने चतुर्विध संघ सहित सन् 1957 का चातुर्मास जयपुर-खानिया में किया। उस चातुर्मास के मध्य आपका शारीरिक स्वास्थ्य अत्यन्त क्षीण होने लगा और आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन महामंत्र का स्मरण करते हुए पद्मासनपूर्वक ध्यानस्थ मुद्रा में समाधिमरणपूर्वक नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। आज आचार्यश्री का भौतिक शरीर हमारे बीच में नहीं है किन्तु उनकी अमूल्य शिक्षाएँ विद्यमान हैं। उन पर अमल करते हुए हमें अपने जीवन को समुन्नत बनाना चाहिए क्योंकि ऐसे महापुरुषों के जीवन पर ही निम्न सूक्ति साकार होती है–

मूरत से कीरत बड़ी, बिना पंख उड़ जाय।
मूरत तो जाती रहे, कीरत कभी न जाय।।

108 फुट विशाल भगवान ऋषभदेव प्रतिमा के अवलोकन हेतु सूरत (गुजरात) से मांगीतुंगी पधारे 2500 भक्तों का विशाल समूह-4 अक्टूबर 2015

विशेष उपस्थित-मांगीतुंगी महोत्सव समिति-गुजरात एवं दमन दीव प्रांत के अध्यक्ष श्री संजय जैन दिवान परिवार, सूरत

दक्षिण भारत जैन सभा के 95वें नैमित्तिक अधिवेशन पर उपस्थित पूज्य पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी (हस्तिनापुर) का सम्मान करते सभा के अध्यक्ष श्री रावसाहेब पाटील-बोरगांव एवं मंचासीन समाज के अनेक गणमान्य महोदय-18 अक्टूबर 2015, अम्बड (जालना) महा.

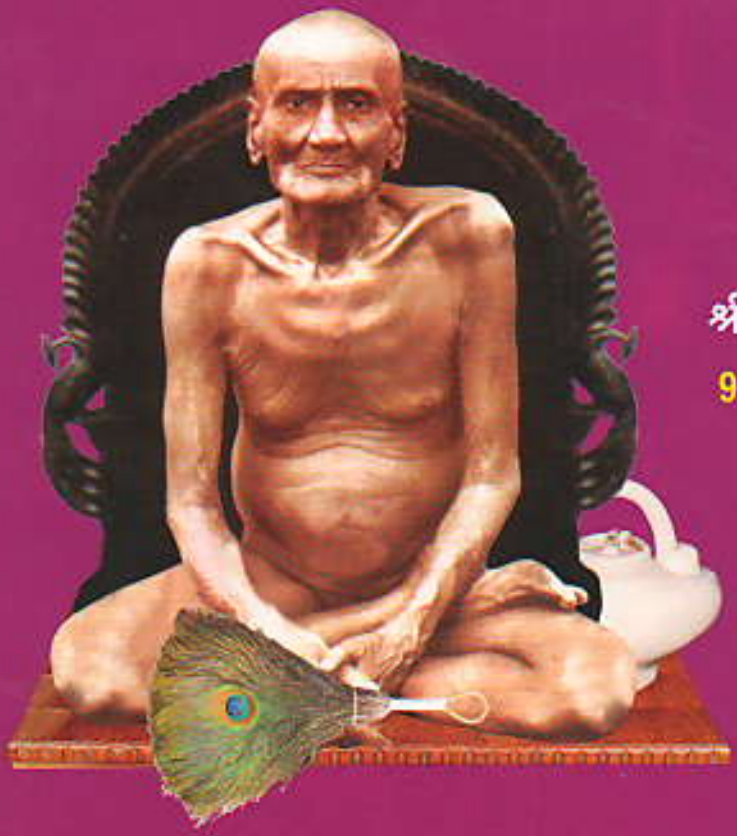

आश्विन शु. ग्यारस
23 अक्टूबर 2015 को
चारित्रचक्रवर्ती आचार्य
श्री शांतिसागर जी महाराज के
91वें आचार्य पदारोहण दिवस
के अवसर पर
शत-शत नमन

आश्विन शु. ग्यारस-
23 अक्टूबर 2015 को
प्रथम पट्टाधीश
आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की
91वीं मुनिदीक्षा दिवस
के अवसर पर
उनके चरणों में
शत-शत नमन

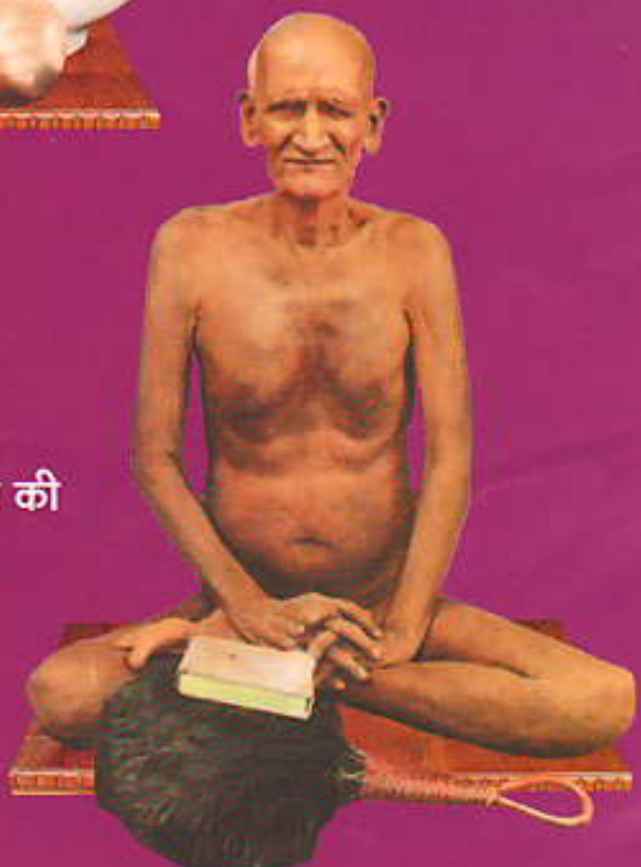

स्वत्वाधिकारी दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र. के लिए श्री कैलाशचंद जैन, करोलबाग-नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित तथा प्रेमी प्रिंटिंग प्रेस, मेरठ द्वारा मुद्रित आवरण एवं रंगीन पृष्ठ विजय जैन, पारस प्रिन्टर्स, दरियागंज-नई दिल्ली द्वारा मुद्रित। फोन (011) 23286976, 23244060